वार्षिक रु. २००, मूल्य रु. २५

ISSN 2582-0656
9 772582 065005

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६३ अंक ८
अगस्त २०२५

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६३

अंक ८

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

श्रावण, सम्वत् २०८२

अगस्त, २०२५

अनुक्रमणिका

* संसार हमारे देश का अत्यन्त ऋणी है : विवेकानन्द ३४२
* कृष्ण एवं कृष्णानुजा (बोधिसत्त्व सेनगुप्ता) ३४५
* युवाओं के प्रेरणास्रोत स्वामी विवेकानन्द (डॉ. रमन सिंह) ३४९
* (बच्चों का आंगन) क्रान्ति की नायिका : शान्ति घोष और सुनीति चौधरी (श्रीमती मिताली सिंह) ३५४
* (युवा प्रांगण) अनसुने योद्धाओं के संघर्ष की प्रेरणादायक गाथाएँ (स्वामी गुणदानन्द) ३५७
* कृष्ण का निराकार वस्त्रावतार (अरुण चुड़ीवाल) ३५९
* आजादी के भूले-बिसरे गीत (डॉ. वन्दना खुशालानी) ३६०
* देश-सेवा हेतु स्वार्थ, सुख-सुविधा का त्याग करें (स्वामी सत्यरूपानन्द) ३६३
* श्रीकृष्ण चरित की महनीयता (स्नेह सिंघानिया) ३६४
* कर्नाटक के कित्तूर की क्रान्तिकारिणी रानी चेन्नाम्मा (रीता घोष) ३६९
* राष्ट्रबोध ही एक लक्ष्य हो (गिरीश पंकज) ३७५
* परतन्त्रता काल में राष्ट्रमन्त्र के उद्गाता (डॉ. राजकुमार उपाध्याय) ३७७
* (भजन एवं कविता) कृष्णचन्द्र प्रभु परम सुजान (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा), * जय जय गिरिधर गोपाल (डॉ. अनिल कुमार), * कृष्ण का संघर्ष से नाता रहा (प्रो. वशिष्ठ अनूप), * व्यर्थ न जनम गँवा (केयूरभूषण) ३५५ * योगिराज अरविन्द (डॉ. अनिल कुमार) ३६२, * श्रीरामकृष्ण-स्तुति-४ (रामकुमार गौड़) ३६८, * नन्दलला चित मोह रहा है (श्रीधर द्विवेदी) ३७४

श्रृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ३४१
पुरखों की थाती ३४१
सम्पादकीय ३४३
रामगीता ३५१
प्रश्नोपनिषद् ३५६
श्रीरामकृष्ण-गीता ३७४
गीतातत्त्व-चिन्तन ३७८
साधुओं के पावन प्रसंग ३८१
समाचार और सूचनाएँ ३८३

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५ (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक) रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति २५/-	२००/-	१०००/-	२०००/-
विदेशो में (हवाई डाक से)	६०यू.एस. डॉलर	३०० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिए	३००/-	१५००/-	

भारत में रजिस्टर्ड पोस्ट से मँगाने का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ३०/- देय होगा।

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

अगस्त माह के जयन्ती और त्यौहार

०९	स्वामी निरञ्जनानन्द
१६	श्रीकृष्णजन्माष्टमी
२२	स्वामी अद्वैतानन्द
५,१९	एकादशी

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र, बेलूड़ मठ के सभाभवन में स्थित भगवान श्रीकृष्ण के चित्र को दर्शाया गया है।

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है। विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है। आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें। विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।, **२.** रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो। आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं।, **३.** लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें।, **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अतः उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।, **५.** पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें।, **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों का पूरा उत्तरदायित्व लेखक का होगा और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा। न्यायालय-क्षेत्र रायपुर (छ.ग.) होगा।, **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें। यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें।

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री अनुराग प्रसाद, कौशाम्बी, गाजियाबाद (उ.प्र.)	८६०१/-
श्री प्रकाश भयलाल पराते, खामला, नागपुर (महा.)	५०००/-
श्री संजय चिंचोलकर, वेयरहाऊस रोड, बिलासपुर (छ.ग.)	२०००/-

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
७२८. श्री राज सिंहजी, वसुन्धरा एनक्लेव, दिल्ली	रज्जु भैया सैनिक विद्या मन्दिर, खांडवाया, बुलंदशहर (उ.प्र.)

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !
आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।
इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी
भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!
Sudarshan Saur
सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए
सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए
सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए
घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त
समझदारी की सोच!
३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!
आजीवन सेवा
लाखां संतुष्ट ग्राहक
विस्तृत डीलर नेटवर्क
Sudarshan Saur®
www.sudarshansaur.com
Toll Free
1800 233 4545
E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६३ अगस्त २०२५ अंक ८

श्रीकृष्ण–स्तुतिः

न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिल देहिनामन्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ।।
विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात्।
करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ।।
व्रजजनार्तिहन् वीर योषिताम् निजजनस्मयध्वंसनस्मित ।
भज सखे भवत्किङ्करीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय ।।

– हे परम सखा श्रीकृष्ण ! आप केवल यशोदा के पुत्र हीं नहीं, अपितु समस्त जीवधारियों के अन्त:करण में साक्षीभाव से निवास करनेवाले अन्तर्यामी हैं। विधाता की प्रार्थना से जगत की रक्षा के लिये आपने यदुवंश में जन्म लिया है।

– हे वृष्णिकुलश्रेष्ठ ! जन्म-मृत्यु रूपी संसार-चक्र के भय से जो कोई आपके चरणाश्रित होता है, आपके कर-कमल उन्हें अभय देते हैं। आप अपने प्रेमियों के मनोवांछित पूर्ण करने में अग्रगण्य हैं। हे प्रियतम ! लक्ष्मी के पाणिग्रहण करनेवाले अपने कर-कमल हमारे सिर पर रख दें।

– हे वीर ! आप व्रजवासियों के दुखनाशक हैं, आपकी मन्दस्मित की एक झलक गोपियों के अहंकार का नाशक है। हे सखा ! हम आपकी दासियाँ हैं और हमारा जीवन आपको पूर्ण समर्पित है। आप अपने सुन्दर मुख का दर्शन हमें दीजिये।

पुरखों की थाती

मुहूर्तमपि जीवेच्च नरः शुक्लेन कर्मणा।
न कल्पमपि कष्टेन लोक-द्वय-विरोधिना।।८७५।।
(चाणक्य)

– भले कर्मों के साथ बिताया गया मनुष्य का क्षण भर का जीवन भी सार्थक है, जबकि इस लोक तथा परलोक के लिये कष्टदायी बुरे कर्मों के साथ बिताया गया युग-भर का जीवन भी निरर्थक है।

अत्यन्तं मलिनो देहः देही चात्यन्तनिर्मलः।
उभयोरन्तरं ज्ञात्वा कस्य शौचं विधीयते।।८७६।।

– देह अत्यन्त अपवित्र है और देही (आत्मा) अत्यन्त पवित्र है। दोनों के बीच का भेद जान लेने के बाद भला किसकी शुद्धि की जाए? (देह के साथ आत्मा का तादात्म्य ही अशुद्धि है।)

धर्मारम्भे ऋणच्छेदे कन्यादाने धनागमे।
विद्याया ग्रहणे रोगे कालक्षेपं न कारयेत् ।।८७७।।

– धर्म की शुरुआत में, ऋण को चुकाने में, कन्या के विवाह में, धन कमाने में, विद्या के अर्जन में तथा रोग की चिकित्सा में जरा भी आलस्य नहीं करना चाहिये।

संसार हमारे देश का अत्यन्त ऋणी है : विवेकानन्द

संसार हमारे देश का अत्यन्त ऋणी है। यदि भिन्न-भिन्न देशों की पारस्परिक तुलना की जाये तो मालूम होगा कि सारा संसार सहिष्णु एवं निरीह भारत का जितना ऋणी है, उतना और किसी देश का नहीं। (५/५)

प्रत्येक जाति का भी उसी तरह किसी न किसी तरफ विशेष झुकाव हुआ करता है। मानो प्रत्येक जाति का एक-एक विशेष जीवनोद्देश्य हुआ करता है। हर एक जाति को समस्त मानव जाति के जीवन को सर्वांग सम्पूर्ण बनाने के लिए किसी व्रत विशेष का पालन करना होता है। अपने व्रत विशेष को पूर्णतः सम्पन्न करने के लिए मानो हर एक जाति को उसका उद्यापन करना ही पड़ेगा। राजनीकि श्रेष्ठता या सामरिक शक्ति प्राप्त करना किसी काल में हमारी जाति का जीवनोद्देश्य न कभी रहा है और न इस समय ही है और यह भी याद रखो कि न तो वह कभी आगे ही होगा। हाँ, हमारा दूसरा ही जातीय जीवनोद्देश्य रहा है। वह यह है कि समग्र जाति की आध्यात्मिक शक्ति को मानो किसी डाइनेमो में संगृहीत, संरक्षित और नियोजित किया गया हो और कभी मौका आने पर वह संचित शक्ति सारी पृथ्वी को एक जलप्लावन में बहा देगी। (५/८,९)

समस्त मानवीय प्रगति में शान्तिप्रिय हिन्दू जाति का कुछ अपना योगदान भी है और आध्यात्मिक आलोक ही भारत का वह दान है। (५/९)

धार्मिक अन्वेषणों द्वारा हमें इस सत्य का पता चलता है कि उत्तम आचरण-शास्त्र से युक्त कोई भी ऐसा देश नहीं है जिसने उसका कुछ न कुछ अंश हमसे न लिया हो, तथा कोई भी ऐसा धर्म नहीं है जिसमें आत्मा के अमरत्व का ज्ञान विद्यमान है और उसने भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में वह हमसे ही ग्रहण नहीं किया है।

राजनीति सम्बन्धी विद्या का विस्तार रणभेरियों और सुसज्जित सेनाओं के बल पर किया जा सकता है। लौकिक एवं समाज सम्बन्धी विद्या का विस्तार आग और तलवारों के बल पर हो सकता है। पर आध्यात्मिक विद्या का विस्तार तो शान्ति द्वारा ही सम्भव है। जिस प्रकार चक्षु और कर्णगोचर न होता हुआ भी मृदु ओस-बिन्दु गुलाब की कलियों को विकसित कर देता है, बस वैसा ही आध्यात्मिक ज्ञान के विस्तार के सम्बन्ध में भी समझो। यही एक दान है, जो भारत दुनिया को बारम्बार देता आया है। (५/११७)

जब कभी भी कोई दिग्विजयी जाति उठी, जिसने संसार के विभिन्न देशों को एक साथ ला दिया और वापस में यातायात तथा संचार की सुविधा कर दी, त्यों ही भारत उठा और उसने संसार की समग्र उन्नति में अपने आध्यात्मिक ज्ञान का भाग भी प्रदान कर दिया। (५/११७-१८)

भारतीय विचार का सबसे बड़ा लक्षण है, उसका शान्त स्वभाव और उसकी नीरवता। जो प्रभूत शक्ति इसके पीछे है, उसका प्रकाश जबरदस्ती से नहीं होता। (५/१६८)

अनदेखे और अनसुने गिरनेवाला कोमल ओस कण जिस प्रकार सुन्दरतम गुलाब की कलियों को खिला देता है, वैसा ही असर भारत के दान का संसार की विचार धारा पर पड़ता रहता है। शांत अज्ञेय किन्तु महाशक्ति के अदम्य बल से, उसने सारे जगत् की विचार-राशि में क्रान्ति मचा दी है, एक नया ही युग खड़ा कर दिया है, किन्तु तो भी कोई नहीं जानता कब ऐसा हुआ। (५/१६८)

सम्पादकीय

स्वाधीनता की वेदना : हम पंछी उन्मुक्त गगन के

प्रात:काल वृक्षों पर कई प्रकार के पक्षियों के कलरव से मन आह्लादित हो जाता है। पक्षियों का एक साथ उड़ना, आपस में खेलना, विभिन्न आकृतियों में वक्र गति में त्वरित

उड़ान मन को आकर्षित करता है। उनका कभी बहुत पास में आकर कुछ लेकर भाग जाना, कभी समीप आकर चुपचाप मेरी ओर देखते रहना, जैसे छोटे बच्चे देखते हैं। इनका उन्मुक्त गगन-विहार बड़ा सुन्दर लगता है। इसके अतिरिक्त कहीं कोई घोसला बना रहा है, तो उसका श्रम और प्रयत्न दर्शनीय है। इतना आनन्द पिंजरे का पक्षी नहीं दे पाता। क्योंकि उसका क्षेत्र सीमित है और वह निवास-भोजन के संघर्ष से मुक्त है। प्रात: भ्रमण-काल में इसी चिन्तन में था, तभी लगभग ४५ वर्ष पहले शिव मंगल सिंह 'सुमन' जी की पढ़ी कविता याद आ गई। छात्र-जीवन में इस कविता ने मुझे केवल देश के स्वतन्त्र होने का ही बोध कराया था, लेकिन आज यह कविता भौगोलिक स्वतन्त्रता के अतीत का अर्थ प्रकाशित करने लगी –

हम पंछी उन्मुक्त गगन के
पिंजर बद्ध न गा पायेंगे।
कनक तीलियों से टकराकर
पुलकित पंख टूट जाएँगे।।

शिव मंगल सिंह 'सुमन' जी की ये पंक्तियाँ आज भी स्वाधीनचेता व्यक्ति की अन्तरात्मा को झकझोर देती हैं। वह सोचने को विवश करती हैं कि क्या सचमुच ही मानव स्वाधीन है? क्या वह उस पक्षी के समान स्वाधीन होने की वेदना की अनुभूति करता है? क्या मानव को पद-प्रतिष्ठा रूपी स्वर्ण-शृंखला बन्धन जैसा लगता है? क्या मानव को पिंजरबद्ध उस पक्षी के सदृश अपने स्वाभाविक आनन्द में वंचित रहने की व्यथा होती है? ये कई प्रश्न मन में उभरकर आत्ममन्थन करने को विवश कर रहे थे। क्योंकि मानव को सच्ची स्वतन्त्रता मिली कहाँ है ! वह अभी भी त्रिगुण पाश में, माया की काल-कोठरी में, षड्विकारों के कारागार में बन्दी बनकर अपने स्वाभाविक आनन्द को विस्मृत कर चुका है। इतने बन्धनों की कठोर-कड़ियों में उसे आनन्द कैसे मिल सकता है?

काम-कांचन के पिपासुओं को तो इस बन्धन का बोध ही नहीं होता। षड्विकारों के रोगी तो वास्तविक जीवन-सुख से ही वंचित हैं। संसार-बुखार के रोगी तो भगवत्-सुधा का स्वाभाविक स्वाद ही विस्मृत कर चुके हैं। वे केवल स्वप्न-सुखाभास करते हैं। क्या उन्हें गोस्वामी तुलसीदास जी के समान यह बोध होता है कि '**अब लौं नसानी अब ना नसैहों**'?

इन बद्ध जीवों से वह तोता श्रेष्ठ है, जिसने राजपरिवार के सभी सुखों का त्याग कर वृक्ष के कोटर में रहने की इच्छा प्रकट की। एक बड़ा मार्मिक और प्रेरक श्लोक है –

वासः कांचनपिंजरे नृपवरैर्नित्यं तनोर्माजनं...

एक तोता राजा के यहाँ सोने के पिंजरे में रहता है। प्रतिदिन चक्रवर्ती सम्राट अपने हाथों से उसे स्नान कराते हैं। उसे सोने के पात्र में खाने के लिये सुन्दर विभिन्न प्रकार के सुस्वाद फल प्राप्त हैं और पीने के लिये स्वर्ण-पात्र में अमृत-जल मिलता है। राज-दरबार में उसे अपनी मधुर वाणी को सुनाने का सुअवसर मिलता है। जब राजा की सभा होती है, तब उसमें वह सतत राम-नाम का उच्चारण करता रहता है। उसकी वाणी सुनने को सभी लोग लालायित रहते हैं। राजा ने सोचा कि इतनी सुविधा इसे कहीं नहीं मिलेगी, यह हमारे राजभवन को छोड़कर कहीं नहीं जायेगा। शुक से ऐसी प्रत्युत्तर की अपेक्षा से एक दिन राजा ने दरबार में उस शुक से पूछा – हे शुक ! बताओ तुम्हारी क्या इच्छा है? यदि तुम्हें अभी इस पिंजरे से बाहर छोड़ दिया जाय, तो कहाँ जाओगे? उस शुक ने नि:संकोच त्वरित अप्रत्याशित उत्तर राजा को दिया। उसने कहा – **हा हा हन्त तथापि जन्म-**

विटपिक्रोडं मनो धावति – हे राजन ! मेरा मन बार-बार अपने जन्म-स्थान वाले उस वृक्ष के कोटर में जाना चाहता है। यदि मुझे अभी इस पिंजरे से मुक्त कर दिया जाय, तो तत्क्षण उड़कर अपनी जन्मभूमि उस वृक्ष के कोटर में चला जाऊँगा। राजा आश्चर्यचकित हो गये ! उन्होंने पूछा – क्यों? यहाँ इतनी सारी सुविधायें हैं। वहाँ तुम क्यों जाना चाहते हो? उसने कहा, हे राजन् ! वहाँ मैं अपने स्वभाव में रहता हूँ। हम उन्मुक्त रहनेवाले, झरनों और सरिता का प्रवाहित जल पीनेवाले, वृक्षों के फलों को खानेवाले और उन्मुक्त गगन में विहार करनेवाले पक्षी हैं। हम इस छोटे-से पिंजरे में कैसे रह सकते हैं? वृक्ष के कोटर में मैं अपने स्वाभाविक आनन्द में रहता हूँ। इसलिये मैं इस स्वर्ण-पिंजर से निकलकर उस वृक्ष-कोटर में जाना चाहता हूँ।

हे मानव ! क्या इस पक्षी की आवाज आप तक पहुँच रही है? नाम-यश की लिप्सा को छोड़कर अपने स्वरूप-प्राप्ति की, भगवान की प्राप्ति की अभीप्सा और व्याकुलता आप में है? आत्मसाक्षात्कार करने से, भगवद्दर्शन करने से व्यक्ति अपने यथार्थ स्वभाव को प्राप्त होता है। इसलिये ऋषि-मुनि, साधक आत्मानुभूति, भगवद्दर्शन कर अपने निज स्वरूप में प्रतिष्ठित होने के लिये व्याकुल रहते हैं। क्योंकि वास्तविक सुख तो स्वभाव में रहने पर ही मिलता है। भगवान श्रीराम ने भी माता शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश देने के बाद अपने दर्शन का फल बताते हुये यही कहा था –

मम दरसन फल परम अनूपा।
जीव पाव निज सहज सरूपा।।

– मेरे दर्शन का परम अनुपम फल यह है कि जीव अपने सहज स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

अत: प्रत्येक मानव को अपने सहज स्वरूप को प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिये। क्योंकि हमारा स्वभाव मुक्त है। हम जीव-पक्षी उन्मुक्त वृत्ति के हैं, ईश्वर-भाव-गगन विहारी हैं। हमारे भीतर कोटि ब्रह्माण्ड-नायक भगवान विराजमान हैं। अखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी की सन्तान होकर हम सीमित और बन्धन में सुखी नहीं रह सकते, अपने स्वभाव में नहीं रह सकते। अत: जीव-पक्षी का बन्धन-मुक्ति, जन्म-मरण-चक्र से मुक्ति हेतु अन्त:क्रान्ति की उद्घोषणा, आनन्दोल्लास-बोध हेतु संघर्ष-स्वर का उद्दीपक है – **हम पक्षी उन्मुक्त गगन के।** OOO

वे प्रकाशस्वरूपिणी माँ सभी के अन्दर हैं

बच्चा, तुम लोग धन्य हो, जो तुमने श्रीरामकृष्ण को जीवन का आदर्श बनाया है। वे ही इस युग के ईश्वर हैं। जो उनके शरणागत होगा, उसका कल्याण अवश्य होगा। मैं बहुत आशीर्वाद देता हूँ, तुम लोगों को शक्ति मिले, तुम लोग धन्य हो जाओ। तुम लोगों का मानवजीवन सार्थक हो और बच्चा, जिस प्रकाश की बात करते हो, वह तो भीतर से आता है। जितना अन्तर्मुखी होने की चेष्टा करोगे, जितना अन्तर से भी अन्तरतम प्रदेश में प्रवेश करोगे, उतना ही प्रकाश दिखाई देगा। प्रकाश बाहर कहीं भी नहीं है। सब भीतर है – भीतर। वे प्रकाशस्वरूपिणी माँ सभी के अन्दर हैं। मेरे, तुम्हारे, सभी के भीतर हैं। वे ब्रह्मा से लेकर कीट-परमाणु, स्थावर-जंगम सब में हैं। उन्हीं आदिभूता महामाया के पास प्रार्थना करो; सब कुंजियाँ उनके पास हैं। वे थोड़ी कृपा करके यदि चाभी घुमा दें, तो प्रकाश-राज्य खुल जाएगा। वे चैतन्य-स्वरूप, सब की नियन्ता आद्याशक्ति ही मन, बुद्धि, अहंकार सब की कर्ता हैं, समस्त जगत की उत्पत्ति-स्थान हैं। उन्हीं माँ के अन्दर से हम सब लोग आये हैं और उन्हीं में फिर हम सब का लय हो जायेगा।

और वे आद्याशक्ति, वे ब्रह्मशक्ति साधारण बुद्धि और मन के अगम्य हैं। शुद्ध मन में उनका प्रकाश होता है। साधन-भजन द्वारा मनुष्य उनको पकड़ नहीं सकता, उनकी धारणा नहीं कर सकता। वे स्वयं प्रकाश हैं। उनकी चैतन्यशक्ति से ही जगत् चैतन्यमय है।... तुम लोग उन्हीं माँ की शरण लिये रहो। वे तुम्हारे भीतर ही हैं। वे ही तुम लोगों के लिए प्रकाश का मार्ग खोल देंगी।

– स्वामी शिवानन्द (महापुरुष महाराज)

कृष्ण-जन्माष्टमी विशेष

कृष्ण एवं कृष्णानुजा

बोधिसत्त्व सेनगुप्ता

शिक्षक, श्रीसारदा विद्या केन्द्र, रामकृष्ण मिशन शिवनाहल्ली, कर्नाटक

आज से लगभग ५००० वर्ष पूर्व भाद्रपद महीने की कृष्णपक्ष में जब गगन में रोहिणी नक्षत्र का उदय हुआ था, निखिल विश्व के स्वामी परम करुणामय श्रीभगवान एवं अखिलकोटिब्रह्माण्ड-नायिका माँ आद्याशक्ति इस भारतवर्ष की पवित्र भूमि में आविर्भूत हुए थे। कृष्ण जन्माष्टमी केवल श्रीबालगोपाल की ही नहीं, साथ ही साथ माँ बालाम्बिका के 'नन्दा' रूप में अवतरण का भी समय है। हरिवंशपुराण के अनुसार अष्टमी तिथि पर श्रीभगवान के जन्म लेने के कुछ ही देर बाद नवमी तिथि में माँ योगमाया इस पृथ्वी पर आविर्भूत हुई थी। मीनाक्षी पंचरत्नम् स्तोत्र में देवी को कहा गया है – 'नारायणस्यानुजाम्', अर्थात् वे श्रीमन्नारायण की बहन हैं। यह परम दिव्य भ्राता और भगिनी के आविर्भाव का कारण एवं विशेषकर श्रीकृष्णावतार में उन लोगों के बीच जो अनन्य सबन्ध व्यक्त हुआ, आज वही हमारे अनुध्यान का विषय है।

परमब्रह्म-परमात्मा के श्रीकृष्ण रूप में अवतार लेने का उद्देश्य क्या है? 'जन्माद्यस्य यत:' अर्थात् सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय कर्ता 'स्वयं भगवान' श्रीकृष्ण इस पृथ्वी पर आविर्भूत हुए थे। लेकिन क्यों? प्राय: कहा जाता है कि वे दैत्यों-दानवों का संहार करने के लिए आए थे। किन्तु क्या यही उनका एकमात्र उद्देश्य था? जिनकी केवल इच्छामात्र से ही प्रलय होता है, जो स्वयं 'लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो काल:' हैं, उनको इतना कष्ट कर के आने की क्या आवश्यकता थी? गीता के चतुर्थ अध्याय में भगवान उनके प्राकट्य का तीन कारण बताते हैं –

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।[१]

जब अधर्म का उदय होने के कारण सनातन धर्म की हानि होती है, तब धर्म-संस्थापनार्थ भगवान आते हैं। जब दुराचारियों की वृद्धि और धर्म की क्षति होती है, तब दुराचारियों के विनाश हेतु वे प्रकट होते हैं। लेकिन 'परित्राणाय साधूनाम्' क्यों? लघुसिद्धान्त-कौमुदी के अनुसार साधु शब्द का अर्थ है – 'साध्नोति परकार्यम् इति साधु'। जिनका सभी कर्म दूसरों के मंगल के लिए ही होता है, वही साधु है। जिनका व्यक्तिगत शुभ-अशुभ सबकुछ परमेश्वर को समर्पित है, जिनको अपने लाभ-हानि की कोई चिन्ता नहीं है, उन साधुओं पर ऐसी क्या बिपदा आती है, जिसके लिए स्वयं भगवान को आना पड़ता है?

भक्तिशास्त्र कह रहे हैं – साधुओं की एक ही विपदा है – 'यत् कार्यं म्रियमानस्य सर्वथा'[२] अर्थात्, आसन्न-मृत्यु जीवों का परम कर्तव्य 'भगवत-साक्षात्कार' है। उसके पहले ही यदि शरीर छूट जाए और मनुष्य-जन्म का उद्देश्य असफल रह जाए, इसी डर से साधुगण स्वयं को विपद्ग्रस्त बोध करते हैं। इस विपत्ति से उनका परित्राण करने के लिए श्रीभगवान बारम्बार इस धरती पर अवतार लेते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण के आविर्भाव के कारण को दर्शाते हुए श्रीमद्भागवत में आख्यान मिलता है – परम पुरुष परमेश्वर, पृश्नि एवं सुतपा के कठोर तपस्या से तुष्ट होकर तीन बार उनके पुत्र होकर जन्म लेने का वरदान देते हैं। प्रथम जन्म में वे पृश्निपुत्र होकर जन्म लेते हैं –

अहम् सुतो बामभवन् पृश्निगर्भ इति स्मृत:।[३]

दूसरी बार पृश्नि एवं सुतपा के अदिति एवं कश्यप के रूप में जन्म लेने से भगवान 'उपेन्द्र' नामक वामन अवतार धारण करते हैं।[४] अन्तिम जन्म में उन दोनों के देवकी और वसुदेव होकर जन्म लेने पर श्रीभगवान अपने सम्पूर्ण कला सहित श्रीकृष्ण के रूप में आविर्भूत होते हैं। आविर्भूत होकर

भगवान ने क्या कहा? श्रीधर स्वामी अपने भाष्य में कह रहे हैं –

यदि कंसाद्बिभेषि त्वं तर्हि माम् गोकुलं नय।
मन्मायां आनयाशु त्वं यशोदागर्भसम्भवाम्।।

– कंस के अत्याचार से भयभीत आप मुझको गोकुल में ले चलिये एवं वहाँ से यशोदा के गर्भ से उत्पन्न मेरी शक्तिरूपिणी योगमाया को लेकर आइए। श्रीमद्भागवत बोल रहे हैं – वसुदेवजी ने सूतिकागृह से अपने पुत्र को लेकर बहिर्गमन की इच्छा की, ठीक उसी समय ही माँ योगमाया नन्द-पत्नी यशोदा के गर्भ से प्रकट हुईं – '**यदा बहिर्गन्तुमियेष तर्ह्यजा या योगमायाजनि नन्दजायया।**'[५] भगवान श्रीकृष्ण के जन्म के बाद ही योगमाया का जन्म हुआ, इसलिये वे सर्वत्र 'कृष्णानुजा' (अर्थात् श्रीकृष्ण की छोटी बहन) के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

कृष्ण-लीला में माँ योगमाया ने क्यों जन्म लिया? साधारण जीवों का जन्म प्रारब्धवश होता है। किन्तु जो सर्वगुणातीत है, अजन्मा है एवं 'भूतानाम् ईश्वर:' है, क्या उनका भी कोई कर्मफल भोगजनित प्रारब्ध हो सकता है? उत्तर है – नहीं। तो फिर कैसे ईश्वर अपनी दिव्य महिमा से पृथक् होकर साधारण मनुष्य सदृश जन्म ले सकते हैं? श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं – केवल खरा सोना से गहना नहीं बनता, बल्कि उसके साथ कुछ मिलाना पड़ता है। वैसे ही केवल लीला हेतु शुद्धसत्त्वमय विग्रह श्रीभगवान अपनी त्रिगुणमयी माया का आश्रय कर मनुष्य शरीर धारण करके इस धरती पर आते हैं। गीता में भगवान ने कहा है – मैं अजन्मा-अविनश्वर होकर भी अपनी माया का आश्रय कर आविर्भूत होता हूँ –

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।।[६]

इसीलिये श्रीभगवान के साथ उनकी चित्शक्ति माँ योगमाया को भी आना पड़ता है। पूर्व में जब भगवान ने नरसिंह एवं वराह अवतार धारण किया था, तब योगमाया शक्ति आवृत थी। रक्तबीज तथा शुम्भ-निशुम्भ वध के समय वही प्रचण्ड शक्ति, मूर्ति धारण कर नारसिंही एवं वाराही के रूप में अभिव्यक्त हुई थी, यह बात हम देवीमाहात्म्य के उत्तरचरित्र के अष्टम अध्याय में पाते हैं। किन्तु श्रीकृष्णावतार में वह शक्ति आवृत नहीं रह सकी, अपितु समग्र कृष्णलीला में उनके उज्ज्वल प्रभाव '**निगमकल्पतरोर्गलितफलम्**' श्रीमद्भागवतम् बताते हैं। भगवान श्रीकृष्ण एवं देवी योगमाया की जो अपूर्व संयोग-लीला है, उसका रसास्वादन हम क्रमश: श्रीभागवतमहापुराण, देवी-माहात्म्य एवं अन्य शास्त्रों के अनुसार करेंगे।

श्रीमद्भागवतम् के दशम स्कन्ध को श्रीसनातन गोस्वामी प्रभुपाद ने 'वदनं प्रफुल्लं' अर्थात् गोविन्द का प्रफुल्ल मुख-कमल कहा है। श्रीकृष्ण के जन्मादि-लीला समन्वित इस अध्याय में भगवान योगमाया को कहते हैं –

गच्छ देवी ! ब्रजं भद्रे ! गोपगोभिरलंकृतम्।[७]

– हे देवी! आप गोप-गोपी एवं गोविन्द द्वारा अलंकृत व्रजधाम में गमन कीजिए एवं देवकी के गर्भ से 'शेषाख्यं मामकं धाम' अर्थात् 'शेष' नामक मेरे अंशविशेष का आकर्षण कर व्रज में अवस्थित वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी के गर्भ में स्थापित कीजिए। उसके बाद मैं स्वयं देवकी के पुत्र के रूप में जन्म लूँगा एवं आप नन्दपत्नी यशोदा के गर्भ से आविर्भूत होंगी। श्रीरामकृष्ण देव योगमाया को 'अघटन-घटनलीला-पटीयसी' कहते हैं। वे असम्भव को भी सम्भव कर सकती हैं। यथार्थ रूप में एक शिशु को माँ के गर्भ से दूसरी माँ के गर्भ में स्थापित करना सम्भव नहीं है। किन्तु कृष्णलीला योगमाया के द्वारा संचालित है, इसीलिए ऐसी अद्भुत घटना भी सरलता से घटी।

उसके बाद क्या हुआ? वसुदेव कंस के कारागार से निकलकर श्रीगोविन्द-स्पर्श की आशा में उच्छलित यमुना एवं घनघोर वर्षा में गोकुल की ओर बढ़ चले। अनन्तनाग ने अपने प्रभु का अवलोकन करने एवं शिशुरूपधारी भगवान को वर्षा से रक्षा करने के लिए अपने सहस्रफण का वसुदेव के मस्तक के ऊपर विस्तार किया। गोकुल में पहुँचकर वसुदेव ने देखा कि समस्त गोकुल योगमाया की माया से निद्रामग्न है। यहाँ तक की यशोदा भी कन्या को जन्म देने के बाद सो गईं –'परिश्रान्ता निद्रयापगतस्मृति:'। वसुदेव अपने पुत्र को

यशोदा रानी के पास रखकर उनकी कन्या को अपनी गोद में लेकर वापस कारागार में आ गए और बेड़ियों में बँध गये।

इस घटना से एक अद्भुत तत्त्व हम लोगों को मिलता है। भक्त (वसुदेव) अनेकों कष्टों को (कारावासजनित दुख, कंस के द्वारा अपने पुत्रों की हत्या) सहन कर कठोर तपस्या से श्रीभगवान की कृपा प्राप्त करने में समर्थ हुए एवं उनका साक्षात् दर्शन कर धन्य हुये। तन्त्रशास्त्रों के अनुसार कुण्डलिनी शक्ति साधक के तपस्या से सन्तुष्ट होकर षट्चक्र-भेदन कर सहस्त्रार में उदित होती है। वहाँ पर परम पुरुष के साथ उनका मिलन होता है। इसी के प्रतीक-स्वरूप देखा जाता है कि परम भक्त वसुदेव सिर पर एक डाली में (जो की सहस्त्रदल-पद्म का प्रतीक है) परम पुरुष श्रीभगवान को धारण किए हुए हैं और उनके सिर पर कुण्डलिनीशक्ति के पूर्ण प्रकाश-स्वरूप अनन्तनाग स्थित हैं। उसके बाद भक्त-साधक लोक कल्याण हेतु भगवान के इच्छानुसार उनकी विद्यामाया (कन्यारूपी योगमाया) का आश्रय कर वसुदेव के सदृश वापस संसार रूपी कारागार की शृंखलाओं को स्वीकार तो करते हैं, लेकिन साधारण जीवों की भाँति उसमें आबद्ध नहीं होते हैं। श्रीभगवान देवकी को कहते हैं –

युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत्।
चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं पराम्।।[८]

अर्थात् पुत्रभाव से या ब्रह्मभाव से निरन्तर भगवान का चिन्तन करते-करते वे भगवान को ही प्राप्त होते हैं। योगमाया का दूसरा कार्य है – भक्त को भगवान के साथ नित्य संयुक्त रखना, जो वसुदेव और देवकी के जीवन में हम देखते हैं कि चरम कष्टों में भी वे लोग निरन्तर कृष्ण-चिन्तन में मग्न हैं।

यहाँ गोकुल में भी माँ योगमाया का प्रभाव परिलक्षित होने लगा। ब्रह्म-मोहन लीला में जब ब्रह्माजी के द्वारा श्रीकृष्ण के सखाओं और गाय-बछड़ों का अपहरण कर लिया गया, तब श्रीकृष्ण उन सबका रूप धारण कर वृन्दावन में विचरण करने लगे। तब उनके भ्राता बलरामजी को बहुत आश्चर्य हुआ। क्योंकि उन्होंने माया के प्रभाव से व्रजधाम में सर्वत्र अलौकिक स्नेह-प्रेम की सरिता को प्रवाहित होते हुये देखा। तब वे समझ गये कि यह श्रीकृष्ण की आत्ममाया है। क्योंकि दूसरी कोई भी दैवी या आसुरी माया बलरामजी को मोहित नहीं कर सकती –

प्रायो मायास्तु मे भर्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी।[९]

जब मृतिका-भक्षण लीला में माँ यशोदा ने बाल गोपाल के मुँह में ही अनन्त कोटि विश्व ब्रह्माण्ड को देखा, तब उनमें तत्त्वज्ञान का उदय हुआ। माँ यशोदा ने भगवान से पति-पुत्र आदि से मोह-मुक्त होने की प्रार्थना की। 'स: विभु: ईश्वर:' श्रीकृष्ण ने देखा, सम्भवत: मातृस्नेह का मधुर रसास्वादन अब प्राप्त नहीं होगा। किन्तु अहो ! प्रभु की लीला विचित्र है! वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं।[१०] वैष्णवी माया के प्रभाव से माँ यशोदा उनके अपूर्व दिव्य दर्शन को भूलकर पहले से अधिक पुत्र-स्नेह में व्याकुल हो गईं तथा गोपाल को गोदी में उठा कर स्नेह करने लगीं। लीलापुष्टि हेतु योगमाया ने माँ यशोदा को पुत्र-स्नेह से मुग्ध किया था।

यहाँ विशेष बात यह है कि अर्जुन की तरह माँ यशोदा को भी 'विश्वरूप' का दर्शन हुआ, लेकिन अलग-अलग भावमाधुरी के कारण दोनों का आस्वादन भी अलग-अलग ही था। भगवान के पास से दिव्य दृष्टि पाकर अर्जुन ने भगवान का अनन्त ऐश्वर्य देखा था एवं देखने के बाद श्रीकृष्ण को पुन: अपना मित्र मानने में उनको संकोच होने लगा। ऐश्वर्य ने मित्रता को ढँक दिया। लेकिन माँ यशोदा ने उनका नित्य दिव्यश्चु से उनके अनन्त ऐश्वर्य में व्रजधाम सहित बाल-गोपाल को विराजते देखा – 'व्रजं सहात्मां'[११]। इसके बाद भी वे कहती हैं – 'एष मे सूत:' अर्थात् 'यह कृष्ण मेरा पुत्र है'। भगवान के ऐश्वर्य का दर्शन करके भी वे नहीं भूली कि वे कृष्ण की माता हैं। यहाँ पर ऐश्वर्य परम माधुर्यमयी वात्सल्यरस को आवृत नहीं कर पाया, बल्कि भगवान की वैष्णवी माया ने उस रस को और भी घनीभूत कर दिया।

ऐसी ही विभिन्न घटनाओं में दृष्टिगोचर होता है कि कृष्णलीला योगमायासमावृत है। अर्थात् श्रीकृष्ण के आदेश या इच्छामात्र से योगमाया ऐसे कार्य करती हैं कि किसी को भी ज्ञात नहीं होता। यह सब श्रीकृष्ण की ही लीला है। योगमाया अघटन-घटन-समर्थ हैं। डॉक्टर महानामव्रत ब्रह्मचारी जी महाराज श्रीमद्भागवत फैलालव के भाष्य में कह रहे हैं – ''अघटन क्या है? कृष्ण-इच्छा से सभी घटन है। जो कृष्ण ने भी इच्छा नहीं की या फिर उनको पता भी नहीं है, वह प्रकृत 'अघटन' है।'' माया जीव को मोहित करती है और योगमाया भगवान को भी मोहित कर सकती है। ऐसे तो देवी योगमाया श्रीकृष्ण पर आश्रित है, लेकिन लीला हेतु जब स्वयं भगवान श्रीकृष्ण योगमाया पर ही निर्भर करते हैं और अपने को पूर्णत: उनके हाथ में समर्पित कर

देते हैं, तब वे 'योगमायामुपाश्रित' होते हैं। उप आधिक्येन आश्रित अर्थात् सब प्रकार से योगमाया के ऊपर निर्भरशील।

श्रीभगवान की परम महिमामयी, महामधुरिमामयी, आत्माराम मुनियों के द्वारा सर्वदा कीर्तित 'महारास' लीला में भी विलक्षण बात हुई। यहाँ स्वयं भगवान को भी ज्ञात नहीं है कि क्या होने जा रहा है। क्योंकि पहले ही सब जानने से लीला की हानि होती है। इसलिये जो सर्वज्ञ स्वयं सम्पूर्ण हैं, उन्होंने भी आज आनन्द-आस्वादन के लिए अपनी भगिनी योगमाया को सर्वस्व सौंपकर उनके निर्देश से यह अभूतपूर्व रासलीला सम्पन्न की। यह तो हुई श्रीमद्भागवत की कथा। देवीमाहात्म्य में भी देखा जाता है कि नए कल्प के प्रारम्भ में भगवान विष्णु को योगनिद्रा से जागृत करने के लिए ब्रह्माजी योगमाया की स्तुति कर रहे हैं एवं देवी के श्रीहरि के नेत्रों, नासिका, बाहु एवं हृदय से महाकाली के रूप में प्रकट होने पर श्रीविष्णु जाग उठते हैं। वे देवी की प्रेरणा से मधु-कैटभ असुरों का वध करते हैं।[१२] शुम्भ-निशुम्भ दानवों का वध करने के लिए देवतागण जब भगवती की स्तुति कर रहे हैं, तब देवी को 'विष्णुमाया' नाम से सम्बोधित कर रहे हैं।[१३]

शास्त्रों के अनुसार श्रीनारायण एवं भगवती दुर्गा में परस्पर सहोदर एवं सहोदरा का सम्बन्ध है। इसीलिए भाई-बहन जैसी शारीरिक समानता है। देवीमाहात्म्य के उत्तरचरित्र के अष्टम अध्याय में भी वही बात कही गयी है –

तथैव वैष्णवी शक्तिगरुडोपरि संस्थिता।
शङ्खचक्र गदा शार्ङ्ग खड्ग हस्ताभ्युपाययौ।।
यज्ञवाराहमतुलं रूपं या विभ्रतो हरेः।
शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम्।।
नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः।
प्राप्ता तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः।।[१४]

देवीमाहात्म्य के एकादश अध्याय में अपने भविष्य अवतार के बारे में देवी कहती हैं – शुम्भ को मारने के लिए वे नन्दगृह में यशोदा के गर्भ से आविर्भूत होंगी –

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ।।
नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी।।[१५]

यही 'नंदा देवी' वासुदेव की बहन हैं। लक्ष्मीतन्त्र के अनुसार – **तामहं नाशयिष्यामि नन्दाख्या विन्ध्यवासिनी।।**

महाभारत के विराट पर्व में महाराज युधिष्ठिर माँ दुर्गा का स्तव करते हुए उनको 'नन्दकुलजात' एवं 'वासुदेव की भगिनी' कहकर वन्दना करते हैं और कंस के कारागार में घटी हुई घटना का भी उल्लेख करते हैं –

यशोदागर्भसम्भूता नारायणवरप्रियाम्।
नंदगोपकुले जातां मंगल्या कुलवर्धिनीं।।
कंसविद्रावणकरीं असुराणां क्षयकरीं।
शीलातटविनिक्षिप्तां आकाशप्रतिगामिनीम्।।
वासुदेवस्य भगिनी दिव्यमाल्यविभूषिताम्।
दिव्याम्बरधरां देवीं खड्गखेटकधारिणीम्।।[१६]

कृष्ण-सखा अर्जुन भी महादेवी की स्तुति करते हुए कहते हैं कि वह कृष्ण की अनुजा है –

अट्टशूलप्रहरणे खड्गखेटकधारिणि।
गोपेन्द्रस्यानुजे ज्येष्ठे नंदगोपकुलोद्भवे।।[१७]

श्रीनन्दलाल एवं श्रीयशोदा दुलाली के आविर्भाव का कारण तथा उनकी लीला अतीव विचित्र एवं अनन्त है। आईये, उन दोनों के चिरन्तन संयोग को हृदय में धारण कर हम सब पवित्र हो जायें। श्रीरामकृष्ण देव कहते थे – जैसे पानी एक ही वस्तु है, किन्तु अलग-अलग लोग उसको अलग-अलग नामों से जानते हैं, वैसे ही वह एक ही सच्चिदानन्द कभी कृष्ण, तो कभी दुर्गा के रूप में हमलोगों की पूजा ग्रहण करते हैं। हम सब यही प्रार्थना करते हैं कि उनकी कृपा से हम लोगों के हृदय से शाक्त एवं वैष्णव संक्रान्त समस्त काल्पनिक विभेद दूर हो। OOO

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. श्रीमद्भगवद्गीता ४.८ **२.** श्रीमद्भागवत १-१९-३७ **३.** वही, १०.३.४१ **४.** वही, १०.३.४२ **५.** वही, १०.३.४७ **६.** गीता, ४.६ **७.** भागवत, १०.२.७ **८.** वही, १०.३.४५ **९.** वही, १०.१३.३७ **१०.** वही, १०.८.४३ **११.** वही, १०.८.३९ **१२.** श्रीदुर्गासप्तशती, प्रथम अध्याय **१३.** वही, अध्याय ५ **१४.** वही, अध्याय ८, श्लोक १८ से २० **१५.** वही, अध्याय ११, श्लोक ४१, ४२ **१६.** महाभारत-विराट पर्व ६.२.४ **१७.** वही, भीष्म पर्व २३.४.१६

भगवान में विश्वास चाहिए। मन में यह दृढ़ रूप से बिठा लेना होगा कि उन्हें पा लेने से, उनकी कृपा होने से मेरे जीवन के सारे संशय हल हो जायेंगे और संसार में जिस कारण से मेरा आना हुआ है, वह सार्थक हो जायेगा, मैं अमृत का आस्वादन कर अमर हो जाऊँगा।

– स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज

स्वतन्त्रता दिवस विशेष

युवाओं के प्रेरणास्त्रोत स्वामी विवेकानन्द

डॉ. रमन सिंह

विधानसभाध्यक्ष, छत्तीसगढ़

(प्रस्तुत व्याख्यान छत्तीसगढ़ विधानसभाध्यक्ष सम्माननीय डॉ. रमन सिंह जी ने १२ जनवरी, २०२५ को रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में राष्ट्रीय युवा दिवस के उपलक्ष्य में आयोजित समारोह में दिया था। – सं.)

आज इस कार्यक्रम में उपस्थित रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी, बस्तर विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डॉ. एस. के सिंह जी, विवेकानन्द विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी, गणमान्य नागरिक, विभिन्न संस्थाओं से आये छात्र-छात्रायें, आप सभी अतिथियों, साथियों और मेरे देश के ऊर्जावान युवाओं का मैं हृदय से हार्दिक स्वागत और अभिनन्दन करता हूँ। आपका यहाँ आना न केवल इस आयोजन को विशेष बना रहा है, बल्कि यह स्वामी विवेकानन्द के आदर्शों और उनके विचारों के प्रति आपकी आस्था और समर्पण को भी दर्शाता है।

यह दिन हम सभी के लिए अत्यन्त गौरव और प्रेरणा का प्रतीक है। यह वह शुभ अवसर है, जब हम 'उठो, जागो और तब तक मत रूको जब तक मंजिल प्राप्त न हो जाए' का संदेश देने वाले युवाओं के प्रेरणास्त्रोत और समाज-सुधारक युग-पुरुष स्वामी विवेकानन्द जी की १६२वीं जयन्ती 'राष्ट्रीय युवा दिवस' मना रहे हैं, जिन्हें हम केवल एक संन्यासी के रूप में नहीं, बल्कि एक राष्ट्र-निर्माता, युवा चेतना के मार्ग-दर्शक और भारत के उज्ज्वल भविष्य के प्रेरणा-स्त्रोत के रूप में याद करते हैं।

नरेन्द्रनाथ दत्त के रूप में शुरू हुआ एक ओजस्वी युवा स्वामी विवेकानन्द बने, जब उन्हें रामकृष्ण परमहंस जैसे गुरु का सान्निध्य प्राप्त हुआ। यह गुरु-शिष्य सम्बन्ध ही था, जिसने नरेन्द्रनाथ दत्त को अपनी आत्मा की गहराई तक पहुँचाया और उन्हें अपने जीवन के सच्चे उद्देश्य से अवगत कराया। रामकृष्ण परमहंस की शिक्षाओं ने स्वामी विवेकानन्द जी को आध्यात्मिकता के उच्चतम शिखर तक पहुँचाया और उन्हें समाज के कल्याण के लिए समर्पित किया। यही कारण है कि स्वामी विवेकानन्द का जीवन एक प्रेरणा बन गया, जो आज भी हम सभी के लिए मार्गदर्शक है।

स्वामी विवेकानन्द जी कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे। वे ध्यान और ज्ञान के प्रतीक, एक सच्चे योगी और निःस्वार्थ समाजसेवी थे। उनका जीवन हमें सिखाता है कि आध्यात्मिकता केवल ध्यान और साधना तक सीमित नहीं

है, बल्कि यह समाज की सेवा और मानवता के कल्याण का माध्यम भी है।

१८९३ का वह कालखण्ड जब भारत अँग्रेजी शासन की दासता का दंश झेल रहा था और हमारी संस्कृति, हमारे ज्ञान को उपेक्षा के दौर से गुजरना पड़ रहा था, तब पूरे विश्व ने भारत के आध्यात्मिक ज्ञान और भारतीयता के दर्शन को स्वामी विवेकानन्द जी के रूप में देखा।

वर्ष १८९३ का वह ऐतिहासिक क्षण, जब स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका के शिकागो में विश्व-धर्म-महासभा में भारत का प्रतिनिधित्व किया, तब उनका वक्तव्य केवल एक भाषण नहीं था, बल्कि भारतीय संस्कृति और धर्म की अमर गाथा थी। अपने सम्बोधन का प्रारम्भ 'मेरे अमेरिकी बहनो और भाइयो' से करते हुए, उन्होंने वहाँ उपस्थित सभी को मानवीयता के बन्धन में बाँध दिया। उस एक वाक्य ने विश्व को यह सन्देश दिया कि भारत की परम्पराएँ प्रेम, समरसता व भाईचारे की प्रतीक हैं। हमारे धर्मशास्त्र सदैव ही, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सूत्र से यह सन्देश देते रहे हैं

कि यह सारा विश्व हमारा परिवार है और इस विश्व में प्रत्येक व्यक्ति हमारे परिवार का अंग है। अपने सम्बोधन में स्वामी विवेकानन्द जी ने पश्चिम को हमारी इस संस्कृति से अवगत करवाया। स्वामीजी ने गर्व के साथ कहा, ''मुझे गर्व है कि मैं उस धर्म का अनुयायी हूँ, जिसने संसार को सहिष्णुता और सार्वभौमिक स्वीकृति का पाठ पढ़ाया है। हम केवल सार्वभौमिक सहिष्णुता पर ही विश्वास नहीं करते, बल्कि हम सभी धर्मों को सच के रूप में स्वीकार करते हैं।'' स्वामीजी के इन शब्दों से पूरा सभा-गृह तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा था।

स्वामीजी ने कहा, ''मुझे एक ऐसे देश के व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इन पृथ्वी के समस्त धर्मों (मतों) और देशों के उत्पीड़ितों और शरणार्थियों को आश्रय दिया। मुझे आपको यह बताते हुए गर्व होता है कि हमने अपने पक्ष में यहूदियों के विशुद्धतम अंश को स्थान दिया, जिन्होंने दक्षिण भारत आकर उसी वर्ष शरण ली थी, जिस वर्ष उनका पवित्र मन्दिर रोमन जाति के आत्याचार से धूल में मिला दिया गया था। ऐसे धर्म का अनुयायी होने का मैं गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने महान जरथस्तु जाति के अवशिष्ट अंश को शरण दी और जिसका पालन अब तक कर रहा है।''

भारत वापस आने के बाद स्वामी विवेकानन्द जी ने शिक्षा के प्रसार और समाज की सेवा के उद्देश्य से बेलूड़ मठ की स्थापना की। स्वामी विवेकानन्द जी २५ वर्ष की आयु से संन्यासी थे, उनके पास कोई धन नहीं था। उन्होंने देश-विदेश में जाकर व्याख्यान दिए और भारत की आध्यात्मिकता से अवगत कराया।

विवेकानन्द योद्धा संन्यासी थे। ऐसे योद्धा संन्यासी, जो साक्षात् जगदम्बा और गुरु परमहंस की इच्छा-पूर्ति के लिए आजीवन जूझते रहे। उनकी इच्छा विश्व-कल्याण की थी। उन्होंने कहा, हमें पश्चिम की अच्छाइयों को ग्रहण करने में संकोच नहीं करना चाहिए। हमें हिन्दू समाज की विकृतियों को दूर करना है, लेकिन अपने मूल आधार को छोड़ना नहीं है। यह आधार है वेद। इसलिए युवा पीढ़ी अपने हिन्दुत्व पर गर्व करें। सत्य का यह प्रकाश सारे विश्व में फैले; यही उनकी इच्छा है। स्वामी विवेकानन्द की ख्याति देश-विदेश में फैली हुई थी।

एक बार की बात है। विवेकानन्द समारोह के लिए विदेश गये थे। उनके दिये गये व्याख्यान से एक विदेशी महिला बहुत प्रभावित हुईं और वे विवेकानन्द के पास आकर बोलीं कि मैं आपसे विवाह करना चाहती हूँ, ताकि आपके जैसा ही मुझे गौरवशाली पुत्र की प्राप्ति हो। इस पर स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि क्या आप जानती हैं कि मैं एक संन्यासी हूँ, भला मैं कैसे विवाह कर सकता हूँ? यदि आप चाहें, तो मुझे अपना पुत्र बना लें, इससे मेरा संन्यास नहीं टूटेगा और आपको मेरे जैसा पुत्र भी मिल जायेगा। यह बात सुनते ही वह विदेशी महिला स्वामी विवेकानन्द के चरणों में गिर पड़ी और बोली कि आप धन्य हो। आप ईश्वर के समान हैं, जो अपने धर्म से कभी विचलित नहीं होते।

स्वामी विवेकानन्द जी की सुन्दर स्मृतियाँ छत्तीसगढ़ में सुरक्षित रखी हैं। वे यहाँ १८७७ में आये थे और २ साल रायपुर में निवास किये थे। वे रायबहादुर भूतनाथ डे के भवन में निवास किये थे। भूतनाथ डे के बेटे हरिनाथ डे विवेकानन्द के समकालीन थे। उन्हें कई भाषाओं का ज्ञान था। स्वामी विवेकानन्द के चरणों से पावन वह मकान आज भी बुढ़ापारा में विद्यमान है।

एक छोटी-सी घटना ने विवेकानन्द जी का जीवन बदल दिया। कोलकाता के स्काटिश कॉलेज के दर्शन के प्रोफेसर हेस्टी क्लास में ट्रान्स (समाधि) कविता पाठ कर रहे थे। वे उस अंग्रेजी कविता का अर्थ छात्रों को समझा रहे थे। कवि इतने प्रकृति प्रेमी थे कि वे कविता पाठ करते समय ट्रांस अवस्था (समाधि) में चले जाते थे। विवेकानन्द ने पूछा, यह ट्रांस (समाधि) की अवस्था कैसी होती है? तो प्रोफेसर हेस्टी ने कहा मैं तो नहीं जानता, किन्तु दक्षिणेश्वर में एक सन्त हैं रामकृष्ण परमहंस, उन्हें इसके बारे में पता हैं। विवेकानन्द परमहंस जी से मिलने पहुँचे। परमहंसजी ने जब विवेकानन्द का स्पर्श किया, तो उन्हें गहरी आध्यात्मिक अनुभूति हुई। उन्होंने उन्हें गुरु के रूप में वरण लिया।

स्वामी विवेकानन्द जी ने रायपुर में संगीत सीखा। बाद में जब उन्होंने रामकृष्ण परमहंस के समक्ष 'मन चलो निज निकेतने' भजन सुनाया, तो उस भजन को सुनकर परमहंस जी भावस्थ हो गये। रायपुर में रहते हुए उन्होंने शतरंज

शेष भाग पृष्ठ ३५३ पर

रामगीता (४/४)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

क्या सूत्र था? सगुण उपासक कौशल्या अम्बा को भगवान रस से ओत-प्रोत कर देते हैं। पर माँ को अखण्ड रूप दिखलाने का तात्पर्य है कि खण्ड में मेरी पूजा करो, पर समझ लो कि हूँ मैं अखण्ड। जो विवेक में अखण्ड है, पर जब हम पूजा करेंगे तो कोई उपाय नहीं है। अखण्ड की पूजा कैसे की जायेगी? इसलिए प्रभु ने कहा, मैं तो अखण्ड हूँ। करोड़ों ब्रह्माण्ड यदि मेरे रोम-रोम में समाए हुए हैं, तो इस छोटे-से मन्दिर में मैं कैसे आ सकता हूँ? तुम्हारे आनन्द और रस के लिये मैंने तुम्हें यह रस दिया। इसका मूल सूत्र यह था कि ज्ञेय रूप में वह अखण्ड है, ध्येय रूप में वह बालक है। यों तो बाल-लीला का आनन्द-रस तो वे दे ही रहे हैं। यह सारा देने के बाद प्रभु को चिन्ता हो गई कि नाटक कहीं बिगड़ तो नहीं जायेगा। अखण्ड को दिखला दिया, तो कहीं माँ मुझे साक्षात् ब्रह्म, अखण्ड ब्रह्म समझकर नित्य दण्डवत् करने लगे, तब तो सारी लीला ही चौपट हो जायेगी। तब भगवान राम ने तुरन्त कहा –

यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई।। १/२०१/८

तुमने जान लिया मुझे, पर किसी से मत कहना। बिल्कुल ध्यान रखना। थोड़ी देर के बाद ही भगवान ने उस रूप को समेट लिया और बालक बन गये और दूध के लिए रोने लगे। माँ ने सोचा, बड़ा बिलम्ब हो गया, अब तक दूध नहीं पिलाया। उसका अभिप्राय यह हुआ कि भगवान की बाल-लीला का यह दृश्य अवश्य आनन्ददायी है, लेकिन यह ध्यान रखना है कि वह अखण्ड है। खण्ड में देख पाना हमारी सीमा है और अखण्ड उसका तात्त्विक स्वरूप है। इन दोनों को जिसने जान लिया, उसने 'वेदान्त वेद्यं विभुम्' को भी जान लिया और भक्तों के भावनाप्रवण भगवान को भी जान लिया। मानो सूत्र वही है यहाँ।

ब्रह्म जब सगुण होगा, तो उस सगुणत्व के साथ अगुणत्व नहीं होगा। नहीं तो बड़ी समस्या आ जायेगी। वे जो गुण की समस्याएँ हैं, वे सारी समस्या आ जाएँगी। इसीलिए जो निर्गुण-निराकारवादी हैं, वे सगुण-साकार ईश्वर कहने में डर जाते हैं। ईश्वर जब काल में आ जायेगा, देश में आ जायेगा, तो क्या होगा? इसका अभिप्राय यह है कि कुछ नहीं होगा, वह तो ज्यों का त्यों है, जो है वही रहेगा। रामनवमी का आनन्द लेने के लिए अपनी सीमा में एक दिन रामनवमी मना लेते हैं। चाहें तो सालभर मना सकते हैं। जिस दिन आपको हृदय में श्रीराम के जन्म की अनुभूति हो, वही रामनवमी है। रामायण का तत्त्व मानो यह है, सगुण की विशेषता यही है कि सगुण हो जाने पर भी वह अगुण बना रहता है। अगुण को अगुण ही रहना है, पर सगुण को सगुण में अगुण रहना है। इसका सर्वश्रेष्ठ निरूपण उस प्रसंग में है, जिस प्रसंग को लोग बहुत व्यंग्य-विनोद के रूप में लिया करते हैं और वह प्रसंग है परशुरामजी और श्रीराम का संवाद।

राम-लीला में नित्य भीड़ घटती-बढ़ती रहती है और उस भीड़ का घटना-बढ़ना तो एक विशेष मनोभूमि के कारण होता है। जब मैं वृन्दावन में गया, तो उस समय मेरी अवस्था केवल उन्नीस-बीस वर्ष की थी। ब्रह्मलीन स्वामी अखण्डानन्द जी ने बड़े स्नेह से मुझे बुला लिया था। उस समय प्रभु ने प्रवचन का कार्य मुझसे ले लिया था। बिलासपुर से वह प्रारम्भ हो गया था। वर्ष भर के भीतर स्वामीजी का दर्शन जबलपुर में हुआ। उन्होंने कहा कि कभी वृन्दावन आना। मैं गया, तो वृन्दावन में संयोग से रामलीला चल रही थी। वृन्दावन में जब रामलीला होती है, तो बहुत बड़ी भीड़

होती है। उसका कारण यह है कि रासलीला तो वहाँ होती ही रहती है। रामलीला में एक नयापन होता है। आश्रम में रामलीला का आयोजन था। स्वामीजी ने कहा चलो, तो गया उनके साथ। रामलीला हुई। उस दिन इतनी भीड़ थी, आश्रम से बाहर तक तिल रखने की भी जगह नहीं थी। पर जब लौटे, तो स्वामीजी गम्भीर थे। मैंने कहा कि आयोजक तो भीड़ देखकर प्रसन्न होते हैं। आयोजन की सफलता का मापदण्ड यही है कि कितनी भीड़ हुई। किन्तु आज आप गम्भीर क्यों हो गये? तो उन्होंने कहा कि इन लोगों की दशा देखकर। कल भी राम-लीला थी, पर इतनी भीड़ नहीं थी। कल भी होगी, पर शायद आधी भीड़ ही आयेगी। क्यों? बोले, अगर राम में प्रेम होता, तो रोज भीड़ होती। पर आज भीड़ इसलिए नहीं है कि रामलीला है। लक्ष्मण-परशुराम संवाद में जो तू-तू मैं-मैं है, उसे देखने के लिये भीड़ उमड़ पड़ी है। इनका स्वभाव ही यही है, तुम ईंट से मारोगे, तो उसका उत्तर मैं पत्थर से दूँगा। इसी स्वभाव वाले हैं और अपना स्वभाव लेकर आते हैं। अभी श्रद्धेय स्वामीजी ने कहा कि ज्ञान का उतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना स्वभाव का पड़ता है। श्रोता तो स्वभाव वाला ही होता है। ऐसा नहीं है कि राम-लीला में आ गये, तो भक्त हो गये। भीड़ हो गई, तो बड़ी ऊँची बात हो गई। कितनी निराशा की बात है कि ये लोग लीला में भी वही देखने के लिये आते हैं, जिसमें उनको अपनी मनोवृत्ति का समर्थन मिले। उधर कानपुर आदि में एक दिन की रामलीला होती है। जो एक दिन की लीला करते हैं उनका नाम है परशुरामी। नाम भी बहुत बढ़िया चुना गया है। वह रात भर लीला चलती है। पूरी रात भर की लीला में लक्ष्मण-परशुरामजी का संवाद चलता है। उस संवाद का रामायण से कुछ लेना-देना नहीं रहता। तुकबन्दी और कविताओं के द्वारा दोनों का विवाद चलता रहता है। किसने किसको क्या कहा और किसने किसको कैसे हराया। पर सत्य तो इससे भिन्न है। आप अगर उस रूप में आनन्द लें, जैसा आपका स्वभाव है, तो आप कुछ नहीं सीख पाएँगे।

कितना गहरा वह संवाद है। वह इतना गहरा संवाद था कि उसको समझने में परशुरामजी महाराज को भी कुछ समय लगा। उसके अन्तरंग अर्थ पर विचार कीजिए। अवतार हैं दोनों। श्रीराम भी अवतार हैं और परशुरामजी भी अवतार हैं। लोग भेद कर लेते हैं कि वे अंशावतार हैं, वे पूर्णावतार हैं। अवतार तो रावण भी है –

कहेसि बहुरि रावन अवतारा। ७/६३/८

अवतार तो आप सब हैं। यह कोई बहुत बड़ाई का शब्द नहीं है। राम के साथ वह बड़ा हो जाता है, पर एक शब्द वह और आ गया –

सब कै निंदा जे जड़ करहीं।
ते चमगादुर होइ अवतरहीं।। ७/१२०/२७

चमगादड़ का भी अवतार होता है। जो दूसरों की बहुत निन्दा किया करते हैं, वे अगले जन्म में चमगादड़ का अवतार लेते हैं। अवतार शब्द बहुत व्यापक अर्थवाला है। अवतार का अर्थ है नीचे उतरना। नीचे दो तरह से उतरा जाता है।

कभी-कभी मैं श्रोताओं से कह देता हूँ। अब आप तो चाहते हैं कि मैं कुछ फिल्मी गाने भी सुना दूँ। आप चाहते हैं कि मैं कुछ शेरो-शायरी भी सुना दूँ। आपने मुझे ऊपर बैठाया है, तो अब मैं आपके पास थोड़े ही बैठूँगा, मैं तो आपको भी ऊपर बैठाने की, ऊपर खींचने की चेष्टा करूँगा।

इसका अर्थ यह है कि अवतार तो सब तरह से है। नीचे उतर जाइए, तब भी आपका अवतार है। आप चमगादड़ भी हो सकते हैं। इस अवतार की सम्भावना तो बहुत रहती है। निन्दा में एक विशेष प्रकार का आनन्द लोगों को आता ही है। भविष्य में वे चमगादड़ होकर अवतरित होंगे। यदि आप यह अवतार चाहते हैं, तो अवश्य लीजिए। रावण का भी अवतार होता है। वह पहले बैकुण्ठ का द्वारपाल था। अवतार का भी संकेत कितना सुन्दर है? शास्त्र कहते हैं –

ईश्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुख रासी।। ७/११६/२

सभी तो ईश्वर के अंश है। जय-विजय तो भगवान के द्वारपाल हैं। द्वारपाल होने का एक संकट भी है। देहरी पर खड़ा होनेवाला भीतर भी जा सकता है, बाहर भी जा सकता है। पहले भीतर की ओर थे। किन्तु महापुरुषों से झगड़ा कर लिया। सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, सनातन जब भगवान के दर्शन के लिए आए, तो उन्होंने रोक दिया। यह कहकर रोक दिया कि भगवान श्रीलक्ष्मीजी के साथ एकान्त में बैठे हुए हैं, आप लोग भी क्या नंगे चले आए? ये चारों महात्मा नंगे रहते हैं। बालक की तरह हैं। ये वस्त्र-धारण नहीं करते। वे चारों बालक दिखाई दे रहे हैं, वे चारों महापुरुष हैं। उनका वस्त्र क्या? दिशाएँ ही उनका वस्त्र हैं। वे तो बहुत काल

होने पर भी निरन्तर बालक ही बने रहते हैं –

देखत बालक बहुकालीना। ७/३१/४

उनके जीवन में बाल वृत्ति ही है। जब वे भीतर जाने लगे, तो द्वारपालों को गुस्सा आ गया, हम लोग क्यों खड़े हैं यहाँ? बिना पूछे चले जा रहे हैं। उन्हें रोक दिया। पर उनके मन में भीतर छिपी हुई बात थी – भगवान के दर्शन की बेचैनी है, तो हमें ही क्यों नहीं देख लेते। बैकुण्ठ का जो वर्णन है, उसमें यही कहा गया है कि वहाँ जो द्वारपाल होते हैं, वे भी भगवान के ही जैसे होते हैं। उनका भगवान के जैसा ही चतुर्भुज रूप होता है। ये सब बहुत ही तत्त्व की बातें हैं। जय-विजय ने सोचा, भगवान में और मुझमें अन्तर क्या है? यह अभिमान उनमें हुआ। उसके बाद महात्मा श्राप दे देते हैं। तुम भीतर जाने योग्य नहीं हो, बाहर जाओ। नीचे उतरो। ढकेल दिया उन्होंने जय-विजय को।

ऋषियों ने कहा, तुमने हमें रोक दिया है, तो तुम्हें भी तीन जन्म रावण का अवतार लेना पड़ेगा। माने अभिमान के कारण नीचे ढकेल दिया गया। ऋषियों ने कहा, तुमने मुझे दर्शन से रोकने की चेष्टा की है, तुम नीचे जाकर देखो, जब तुम नीचे उतरोगे, तब तुम यह अनुभव कर सकोगे कि नीचे उतर कर तुम क्या बन गये, क्या से क्या हो गये ! देखिये अभिमान में कैसा आचरण हो गया ! उसी समय भगवान आ गये। भगवान ने चारों महात्माओं की स्तुति की। उन्होंने कहा महाराज, आपने बहुत अच्छा किया, उनको श्राप दे दिया। मैं तो कहता हूँ कि ये तो मेरे पार्षद थे, यदि मेरी ये भुजाएँ भी भूल से कभी आपका अपमान कर बैठें, तो मैं इसको भी काट कर फेंक दूँगा – **छिन्द्यां सुबाहुमपि चेतप्रतिकूलवृत्तिम्।** मैं प्रणाम करता हूँ। आपने इन्हें नीचे ढकेला है, तो उन्हें उठाने के लिए मुझे भी नीचे उतरना पड़ेगा। तो अवतार नीचे ढकेलने पर भी होता है। नीचे वह भी उतर आता है और अवतार स्वयं नीचे उतरकर आने पर भी होता है। भगवान ने कहा कि ये तीन जन्म लेंगे, तो मैं चार जन्म लूँगा। कितना सुन्दर संकेत है, बड़े कृपालु हैं। अगर बैकुण्ठ में रहकर भी उनमें दोष आ गया, तो दोष को मिटाना भी तो मेरा ही कर्तव्य है। अगर इनका तीन जन्म होगा, तो महाराज, मैं चार जन्म ले लूँगा और उनका आप जैसा कहेंगे, कल्याण होगा।

वस्तुत: भगवान का अवतार-तत्त्व इस संवाद में स्पष्ट किया गया है। परशुरामजी भी अवतार हैं, राम भी अवतार हैं, सभी अवतार हैं। अपनी सीमा में चाहे ढकेले गये हों, चाहे कूदे हुए हों, चाहे उतरे हुए हों, अवतार तो हैं ही। संवाद क्या था? उसको गहाराई से अगर कोई पढ़े, तो बाहर से हँसने की बात लगेगी, पर भीतर से तो इतनी बड़ी बातें उसमें हैं कि आप चकित हो जाएँगे। परशुरामजी महाराज राम हैं। कितना बड़ा संकेत है? संयोग ऐसा है कि दोनों अवतारों का नाम राम है। दोनों राम हैं, पर एक राम निरुपाधि हैं और दूसरे सोपाधि हैं। एक राम के साथ कोई उपाधि नहीं है, यद्यपि वे धनुष धारण करते हैं, पर वे धनुषराम नहीं है, और दूसरे परशु धारण करने के कारण परशुराम हैं। दान की यह सहज वृत्ति है कि व्यक्ति नाम चाहता है। नाम के साथ जो बात कल कही गई थी। परशु दान का प्रतीक है और दान के साथ नाम की वृत्ति होती है। यह व्यक्ति का स्वभाव है। वह नाम की वृत्ति भी सहज मिटने वाली नहीं है। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ३५० का शेष भाग

सीखी। विवेकानन्दजी के विचारों के प्रचार-प्रसार हेतु रायपुर में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम की स्थापना स्वामी आत्मानन्द जी ने की। बाद में सत्यरूपानन्द जी ने इसे सँभाला। 'नर सेवा ही नारायण सेवा हैं'। इसके साथ बस्तर के सुदूर क्षेत्र में नारायणपुर में भी विवेकानन्द आश्रम की स्थापना की। इन दोनों आश्रमों के माध्यम से जन-सेवा का कार्य हो रहा है। नारायणपुर में अबुझमाड़िया बच्चों के लिये उच्च हस्तशिल्प कला एवं लड़कों के लिये विद्यालय है, पॉलिटेकनिक कॉलेज है, चिकित्सा क्षेत्र में कार्य हो रहे हैं।

स्वामीजी की प्रेरणा से लाखों युवा राष्ट-निर्माण में लगे हैं। रायपुर विमानतल का नाम स्वामी विवेकानन्द के नाम से रखा गया है। बूढ़ा तालाब जहाँ विवेकानन्द जी तैरते थे का नाम विवेकानन्द सरोवर रखा गया है, बूढ़ा तालाब में विवेकानन्द जी की विशाल प्रतिमा स्थापित है।

मेरा इस आश्रम से बहुत पुराना और गहरा सम्बन्ध है। मैं स्वामी सत्यरूपानन्द जी की गोद में खेला हूँ। स्वामी आत्मानन्द जी और स्वामी सत्यरूपानन्द जी का स्नेह पाया हूँ। मुझे स्वामी सत्यरूपानन्द जी का मार्ग-दर्शन सदा मिलता रहा है। ○○○

क्रान्ति की नायिका – शान्ति घोष और सुनीति चौधरी

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

स्वतन्त्रता दिवस विशेष

बच्चो, आज हम एक पराधीन भारत की ऐसी कम आयु की क्रान्तिकारी बालिका के विषय में बताने जा रहे हैं, जिनके बारे में हमें बहुत ही कम सुनने को मिलता है। इनका जन्म २२ नवम्बर, १९१६ को ब्रिटिश भारत (अब बांग्लादेश) में हुआ था। उनके पिता का नाम देवेन्द्रनाथ घोष था, जो एक राष्ट्रवादी और प.बंगाल के कोमिल्ला के विक्टोरिया कॉलेज में दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर थे। ''अपनी मातृभूमि के लिए त्याग का नाम जीवन है।'' स्वामी विवेकानन्द के इन शब्दों ने देश के लिए कुछ करने के लिए इनके विचारों को और मजबूती दी। इसलिये मात्र १५ वर्ष की उम्र में शान्ति अंग्रेज अफसर को गोली मार दी थी। १९३१ में कलकत्ता के एक गर्ल्स स्कूल में पढ़ने वाली १५ वर्ष की शान्ति घोष अंग्रेजों के राज से देश को आजाद कराने के लिए युगान्तर पार्टी से जुड़ी।

शान्ति पर अपने पिता की राष्ट्रभक्ति का बहुत प्रभाव था। वे बचपन से ही भारतीय क्रान्तिकारियों के बारे में पढ़ती

शान्ति घोष और सुनीति चौधरी

रहती थीं। यह संगठन क्रान्तिकारी गतिविधियों के लिए ट्रेनिंग भी कराता था। १४ दिसम्बर, १९३१ को शान्ति अपनी एक सहपाठी सुनीति चौधरी के साथ कोमिल्ला के जिला मजिस्ट्रेट और अंग्रेज अफसर चार्ल्स जेफरी स्टिफेन्स के बंगले में पहुँची। उन्होंने यह बहाना किया कि वे दोनों कॉलेज में प्रवेश लेने आयी हैं। जब चार्ल्स जेफरी उनके कागजात देखने लगे, तब उन्होंने अपनी शॉल के नीचे छिपी पिस्तौल निकाली। शान्ति ने जेफरी को गोली मार दी। इससे कार्यालय में चारों ओर अफरा-तफरी मच गई। शान्ति और सुनीति दोनों को पकड़ लिया गया। १९३७ में स्वतन्त्रता सेनानियों के प्रयास से शान्ति घोष को जेल से रिहा कर दिया गया। जेल से निकलने के बाद उन्होंने अपनी पढ़ाई पूरी की। वे १९५२ से १९६०-६२ और १९६७-६८ के समय पश्चिम बंगाल विधान परिषद में कार्यरत रहीं। उन्होंने अरुण वाहनी नामक आत्मकथा लिखी। शान्ति घोष का १८८९ में निधन हो गया।

उधर उनकी सहपाठी सुनीति चौधरी ने भी जेल से आजाद होने के बाद डॉक्टरी की पढ़ाई पूरी करके देश के लोगों को चिकित्सा द्वारा बहुत सेवा की और १२ जनवरी, १९८८ को सुनीति चौधरी भी इस संसार से चल बसीं।

तो बच्चो, इनकी कहानी से हमें यह सीखने को मिलता है कि मन में सच्चे देश-प्रेम की यदि इच्छा हो, तो उम्र का कोई बन्धन नहीं होता। ○○○

भजन एवं कविता

कृष्णचन्द्र प्रभु परम सुजान

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

नीलकमलसम दिव्य कान्तियुत, ओठों पर अनुपम मुस्कान।
भक्तों के हिय में नित बसते, कृष्णचन्द्र प्रभु परम सुजान।।
भवसागर से पार कराते, करके अपनी कृपा महान।
दुख-कष्ट-दारिद्र्य मिटाते, प्रणतों का करते कल्यान ।।
नित्य सच्चिदानन्द रूप वे, जग-अघ हरते कृपानिधान ।
वृन्दावन-भूषण हैं वे प्रभु, जड़-चेतन में विराजमान ।।
सकल शास्त्र जिनका यश गाते, दिव्य गुणों से हैं गुणवान।
धर्मग्लानि को त्वरित मिटाते, करते हैं भवरोग-निदान ।।
सकल देव के वे हितकारी, दुष्टों के वे काल समान ।
धीर पुरुष उनको हिय रखकर, करते सदा उन्हीं का ध्यान।।
गोपीजन आह्लादप्रदायक, देते उन्हें प्रेम का दान।
अज अविनाशी पूर्णकाम हैं, परमानन्द कन्द भगवान् ।।

जय जय गिरिधर गोपाल

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गयाजी, बिहार

वासुदेव नन्दलाल,
जय जय गिरिधर गोपाल ।
कर कंज चक्र-शंख, शोभत सिर मोरपंख।
गोरोचन तिलक भाल, जय जय गिरिधर गोपाल ।।
मेघ सदृश कृष्ण वदन, पीत-वसन कमल-नयन ।
चपल दृष्टि अधर लाल, जय जय गिरिधर गोपाल ।।
मुरली मृदुल अधर राजे, मन्द-मन्द मधुर बाजे।
ग्वालबाल देत ताल, जय जय गिरिधर गोपाल ।।
मारे दुष्ट कंस हरि, राधा हिय-हंस हरि ।
रुक्मिणी मानस मराल, जय जय गिरिधर गोपाल ।।
देवकी के सुत ललाम, यशोदा किशोर श्याम ।
राखो मोहि प्रणतपाल, जय जय गिरिधर गोपाल ।।
मुनिजन नित ध्यान करत, अमित छवि चित्त धरत ।
काटो माया-मोह जाल, जय जय गिरिधर गोपाल ।।

कृष्ण का संघर्ष से नाता रहा

प्रो. वशिष्ठ अनूप
हिन्दी विभागाध्यक्ष
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

जन्म से ही मौत का आतंक मँड़राता रहा,
जिन्दगी भर कृष्ण का संघर्ष से नाता रहा ।
रासलीला ही नहीं की गोपियों के साथ में,
लोकहित अन्याय से हरवक्त टकराता रहा ।
छेड़ना, माखन चुराना तो बहाना मात्र था ,
प्रेम था जो दरबदर कान्हाँ को भटकाता रहा ।
नेह था, पीड़ा भी थी, आँसू भी थे, मुस्कान थी,
बाँसुरी में जाने कितने राग वो गाता रहा ।
भक्तजन, योगी-यती सब मुक्ति जिससे चाहते,
माँ के हाथों वह खुशी से खुद को बँधवाता रहा ।
शान्ति की खातिर मिला अपमान तो वह भी सहा,
धर्म का मंतव्य वह रण में भी समझाता रहा ।

व्यर्थ न जनम गँवा

केयूरभूषण
स्वतन्त्रता सेनानी और पूर्व सांसद, रायपुर

भजन कर ले व्यर्थ न जनम गँवा ।।
बालपन तू खेल गंवाया, अब जब तूने यौवन पाया ।
यौवन रहते ही कर ले कुछ, बूढ़े तन में हुआ न हुआ ।।
भजन कर ले ...
अन्तर्मन तु जागृत कर ले, रख ले पवित्र विचार ।
अग्नि कुंड में स्वाहा कर दे, मन के सभी विकार ।।
मिट जाए तेरी मन की तृष्णा, बदल दे ऐसी जग की हवा ।।
भजन कर ले ...
मृग-मरीचिका माया देख लचाये रे तेरा जिवरा ।
मोह माया के लोभ में पड़कर, कलुषित कर लिया हियरा ।।
हृदय विकार मिटाने की बस, भजन ही तो है क्या ।।
भजन कर ले ...

प्रश्नोपनिषद् (६२)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

भाष्य – तथा तैः एव भूतैः आरब्धम् इन्द्रियं द्विप्रकारं बुद्ध्यर्थं कर्मार्थं च दश-संख्याकम्।

भाष्यार्थ – इसके बाद, उसने (उन पंचभूतों से निर्मित विषयों के) ज्ञान तथा कर्म हेतु, दो प्रकार के 'इन्द्रिय' बनाए, जिनकी संख्या दस है।

भाष्य – तस्य च ईश्वरम्-अन्तःस्थं संशय-सङ्कल्प-लक्षणं मनः।

भाष्यार्थ – इन इन्द्रियों के स्वामी के रूप में उसने संशय तथा संकल्प (-विकल्प) लक्षणवाले और देह के भीतर निवास करनेवाले 'मन' की रचना की।

भाष्य – एवं प्राणिनां कार्यं करणं च सृष्ट्वा तत्-स्थिति-अर्थं व्रीहि-यव-आदि-लक्षणम्-अन्नम्।

भाष्यार्थ – इस प्रकार प्राणियों के लिये कार्य (विषयों) तथा कारण (इन्द्रियों) की रचना करने के बाद, इनके निर्वाह हेतु उसने धान, जौ आदि नामक अन्न की सृष्टि की।

भाष्य – ततः च अन्नात्-अद्यमानात् वीर्यं सामर्थ्यं बलं सर्व-कर्म-प्रवृत्ति-साधनम्।

भाष्यार्थ – फिर उस अन्न के खाये जाने पर उससे सभी प्रकार के कर्मों की प्रवृत्ति के साधनभूत ऊर्जा अर्थात् सामर्थ्य तथा बल को उत्पन्न किया।

भाष्य – तद्-वीर्यवतां च प्राणिनां तपो विशुद्धि-साधनं सङ्कीर्यमाणानाम्।

भाष्यार्थ – इसके बाद उसने इन ऊर्जावान् प्राणियों के पापों से ग्रस्त चित्तों की विशुद्धि के साधनभूत 'तप' की सृष्टि की।

भाष्य – मन्त्राः तपो-विशुद्ध-अन्तः-बहिः-करणेभ्यः कर्म-साधनभूता ऋग्-यजुः-साम-अथर्व-अङ्गिरसः।

भाष्यार्थ – फिर, 'तप' के द्वारा जिनके बाह्य तथा अन्तःकरण शुद्ध हो चुके हैं, उन प्राणियों के लिए उसने कर्म के साधनभूत ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्व-अङ्गिरस के 'मन्त्रों' (चार वेदों) की रचना की।

भाष्य – ततः कर्म-अग्निहोत्र-आदि-लक्षणम्। ततो लोकाः कर्मणां फलम्। तेषु च सृष्टानां प्राणिनां नाम च देवदत्तो यज्ञदत्त इत्यादि।

भाष्यार्थ – इसके बाद उसने 'अग्निहोत्र' आदि नामवाले कर्मों की सृष्टि की। फिर, इन कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त होनेवाले लोकों की रचना की। तब उसने इस प्रकार रचे गये लोकों में स्थित प्राणियों के लिये देवदत्त, यज्ञदत्त आदि नामों का निर्माण किया।

भाष्य – एवम् एताः कलाः प्राणिनाम् अविद्यादि-दोष-बीज-अपेक्षया सृष्टाः तैमिरिक-दृष्टि-सृष्टा इव द्विचन्द्र-मशक-मक्षिकाद्याः स्वप्न-दृक्-सृष्टा इव च सर्व-पदार्थाः।

भाष्यार्थ – इस प्रकार अविद्या (अज्ञान) आदि दोषों के बीज के अनुसार, (आँखों के) तिमिर रोग से ग्रस्त व्यक्ति को दिखनेवाले दो चन्द्रमा, मच्छर, मक्खी आदि और स्वप्न में दृश्यमान सारे पदार्थों के समान, इन (सोलह) कलाओं की रचना हुई।

भाष्य – पुनः तस्मिन् एव पुरुषे प्रलीयन्ते हित्वा नाम-रूप-आदि-विभागम्।।४।।

भाष्यार्थ – ये कलाएँ अन्ततः अपने-अपने नाम-रूप आदि भेदों को त्यागकर उसी पुरुष में लीन हो जाती हैं।।४।।

भाष्य – कथम् –

भाष्यार्थ – कैसे लीन हो जाती हैं, यही बताते हैं –

(क्रमशः)

स्वतन्त्रता दिवस विशेष

अनसुने योद्धाओं के संघर्ष की प्रेरणादायक गाथाएँ

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

स्वतंत्रता केवल विदेशी शासन की अनुपस्थिति नहीं है; यह आत्मनिर्भरता की भावना, अन्याय के विरुद्ध खड़े होने का साहस तथा अपने भाग्य को स्वयं गढ़ने का दृढ़ संकल्प है। युवाओं के लिए यह समझना आवश्यक है कि हमारे पूर्वजों ने जो बलिदान दिए, वे केवल इतिहास की घटनाएँ नहीं, बल्कि वीरता, सहनशीलता एवं उत्तरदायित्व की प्रेरणादायक शिक्षाएँ हैं।

आइए, कुछ अल्पज्ञात घटनाओं को जानें, जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के उन अनसुने योद्धाओं के संघर्ष, दृढ़ निश्चय एवं अडिग साहस को दर्शाती हैं।

कनकलता बरुआ – असम की किशोरी बलिदानी

१९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दौरान, १७ वर्षीय कनकलता बरुआ ने असम में एक विरोध-प्रदर्शन का नेतृत्व किया, जिसमें उन्होंने गोहपुर प्रहरीगृह पर राष्ट्रध्वज फहराने का प्रयास किया। वे जानती थीं कि यह अत्यन्त संकटपूर्ण है, परन्तु फिर भी वे निर्भीक होकर आगे बढ़ीं और ब्रिटिश प्रहरी बल की चेतावनी को अनदेखा कर दिया। शत्रु ने उन पर गोलियाँ चला दीं, किन्तु उन्होंने ध्वज गिरने नहीं दिया।

संघर्ष : कनकलता ने बाल्यावस्था में ही ब्रिटिश दमन देखा था एवं स्वतंत्रता आन्दोलन से गहराई से प्रभावित थीं। किशोरी होते हुए भी उन्होंने अद्वितीय साहस दिखाया एवं युवाओं को प्रेरित किया कि वे अन्याय के विरुद्ध खड़े हों। उनका बलिदान हमें यह सिखाता है कि वीरता आयु पर निर्भर नहीं होती।

अल्लूरी सीताराम राजू – वन योद्धा

आन्ध्रप्रदेश के आदिवासी क्षेत्रों में, युवा क्रान्तिकारी अल्लूरी सीताराम राजू ने ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध विद्रोह किया। १९२० के दशक में उन्होंने 'राम्पा विद्रोह' का नेतृत्व किया एवं अपने आदिवासी साथियों के साथ ब्रिटिश प्रहरीगृहों पर आक्रमण कर शस्त्र अर्जित किए तथा स्वाधिकारों की रक्षा की। उन्होंने बिना किसी भय के ब्रिटिश सेना का सामना किया, घने वनों में छिपकर गुरिल्ला युद्धनीति अपनाई। अन्ततः २७ वर्ष की अल्पायु में उन्हें पकड़कर बलपूर्वक मार दिया गया, किन्तु उनकी संघर्षशीलता एवं वीरता आज भी प्रेरणा देती है।

संघर्ष : सीताराम राजू ने ब्रिटिश सत्ता को अपने आदिवासी समाज का शोषण करते देखा। भूमि-हरण एवं दमनकारी नीतियों से पीड़ित जनमानस के लिए उन्होंने सुखमय जीवन त्यागकर संघर्ष का पथ अपनाया। उनके पास संगठित सेना नहीं थी, किन्तु उन्होंने धनुष-बाण से सुसज्जित होकर ब्रिटिश सैनिकों के विरुद्ध युद्ध किया। उनका संघर्ष दृढ़ निश्चय एवं अदम्य साहस का परिचायक है।

पीर अली खान – एक अनसुना क्रान्तिकारी योद्धा

पीर अली खान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के उन अनसुने योद्धाओं में से एक थे, जिन्होंने अपने अदम्य साहस और बलिदान से देश की स्वतंत्रता की नींव को सुदृढ़ किया।

पीर अली खान का जन्म बिहार के पटना जिले में हुआ था। वे एक सम्पन्न परिवार से थे, लेकिन राष्ट्रप्रेम की भावना ने उन्हें ऐश्वर्य से दूर कर दिया। उनका पालन-पोषण उस समय के सामाजिक और राजनीतिक परिवेश में हुआ, जब अँग्रेज़ी शासन अपने चरम पर था और भारतीयों को दबाने के लिए हर प्रकार के दमनकारी उपाय कर रहा था। उन्होंने पारम्परिक इस्लामी शिक्षा प्राप्त की और इसके साथ ही अपने ज्ञान को विस्तृत करने के लिए स्वतंत्र अध्ययन भी किया।

स्वतंत्रता संग्राम में योगदान

पीर अली खान १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम में क्रान्ति के अग्रणी सेनानी थे। वे १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से पूर्व पटना में एक पुस्तक विक्रेता थे। लेकिन उनकी दुकान केवल पुस्तकों का केन्द्र नहीं थी, बल्कि यह क्रान्तिकारियों

की गुप्त गतिविधियों का केन्द्र थी। पुस्तक विक्रेता पीर अली ने क्रान्तिकारी पत्रक एवं शस्त्रों का गुप्त वितरण किया। उनकी गतिविधियों ने ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध विद्रोह की ज्वाला प्रज्वलित की। जब उन्हें बन्दी बनाया गया, तो उन्होंने भयंकर यातनाएँ सहन कीं, किन्तु अपने साथियों के नाम उजागर नहीं किये। मृत्युदण्ड दिए जाने के पश्चात् भी उन्होंने दृढ़तापूर्वक घोषणा की कि भारत अवश्य स्वतंत्र होगा। उन्होंने अँग्रेजों के विरुद्ध संगठित होकर विद्रोह की योजनाएँ बनाईं और स्वतंत्रता सेनानियों को हथियार और सूचना प्रदान करने का कार्य किया। जब १८५७ की क्रान्ति अपने चरम पर थी, तब पीर अली खान ने अँग्रेजों के विरुद्ध व्यापक आन्दोलन में भाग लिया। उन्होंने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह की चिंगारी भड़काने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने अपने साथियों के साथ मिलकर गुप्त सभाएँ आयोजित कीं, क्रान्तिकारी साहित्य का प्रचार किया और ब्रिटिश सेना के विरुद्ध प्रत्यक्ष युद्ध के लिए युवाओं को तैयार किया।

अदम्य साहस और बलिदान

जब अँग्रेजों को उनकी क्रान्तिकारी गतिविधियों की भनक लगी, तो उन्होंने उन्हें बन्दी बनाने की योजना बनाई। लेकिन पीर अली खान अँग्रेजों के समर्पण से कोसों दूर थे। उन्होंने अन्तिम साँस तक अँग्रेजों का विरोध करने का निर्णय लिया। अन्ततः, उन्हें बन्दी बना लिया गया और ७ जुलाई १८५७ को पटना में फाँसी दे दी गई। उनके बलिदान ने स्वतंत्रता संग्राम के अन्य सेनानियों को प्रेरित किया और उनके अद्वितीय साहस ने यह सन्देश दिया कि देश की स्वतंत्रता के लिए मर-मिटने की भावना किसी विशेष वर्ग, धर्म या समुदाय की नहीं, बल्कि हर सच्चे भारतीय का कर्तव्य है।

रानी गाइदिनल्यू – नागाओं की लौह महिला

मणिपुर और नागालैण्ड की स्वतंत्रता संग्राम सेनानी रानी गाइदिनल्यू मात्र १३ वर्ष की आयु में अँग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह में कूद पड़ीं। उन्होंने अपने समुदाय को ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध संगठित किया और गुरिल्ला युद्ध किया। १६ वर्ष की आयु में उन्हें बन्दी बना कर आजीवन कारावास दिया गया, लेकिन उनके संघर्ष और बलिदान को पण्डित नेहरू ने मान्यता दी और उन्हें 'रानी' की उपाधि दी।

रानी गाइदिनल्यू

संघर्ष : रानी गाइदिनल्यू ने समाज और राष्ट्र; दोनों के लिए संघर्ष किया। उन्होंने अपने क्षेत्र की सांस्कृतिक स्वतंत्रता की रक्षा के साथ-साथ ब्रिटिश अत्याचारों के विरुद्ध भी मोर्चा खोला।

उदय सिंह – जल-क्रान्ति के नायक

राजस्थान के वीर योद्धा उदय सिंह ने अँग्रेजों के विरुद्ध नहरों और जल-स्रोतों पर अधिकार के लिए संघर्ष किया। वे मानते थे कि जल ही जीवन का आधार है और ब्रिटिश शासन द्वारा भारतीय किसानों के जल संसाधनों को नियंत्रित करना अन्याय था। उन्होंने किसानों को संगठित कर जल अधिकार आन्दोलन चलाया।

संघर्ष : उन्होंने जीवनभर बिना किसी निजी स्वार्थ के समाज की भलाई के लिए लड़ाई लड़ी। उनकी संघर्षगाथा आज के युवाओं के लिए यह सन्देश देती है कि प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष करते रहना चाहिए।

युवाओं के लिए वर्तमान सन्दर्भ में प्रेरणा

आज, जब हम स्वतंत्रता का आनन्द ले रहे हैं, हमें उन वीर योद्धाओं को याद रखना चाहिए, जिन्होंने अपने प्राणों की आहुति दी। आज, स्वतंत्रता केवल राजनीतिक प्रभुता तक सीमित नहीं है; यह स्वतंत्र चिन्तन, उत्तरदायित्वपूर्वक आचरण करने एवं समाज में सकारात्मक योगदान देने की क्षमता भी है। यदि हमारे पूर्वज गोलियों एवं मृत्युदण्ड का सामना कर सकते थे, तो हम भी उनके साहस से प्रेरणा लेकर आधुनिक जीवन की कठिनाइयों का डटकर प्रतिरोध कर सकते हैं।

आइए, इन अनसुने नायकों की गाथाओं से प्रेरणा लेकर अपने भीतर दृढ़ संकल्प एवं साहस की ज्योति प्रज्वलित करें। सशक्त बनें, निडर बनें एवं यह स्मरण रखें – स्वतंत्रता केवल एक अधिकार नहीं, अपितु एक दायित्व भी है, जिसे अडिग साहस एवं समर्पण से संरक्षित एवं पोषित करना आवश्यक है। ○○○

कृष्ण-जन्माष्टमी विशेष

श्रीकृष्ण का निराकार वस्त्रावतार

अरुण चूड़ीवाल, कोलकाता

द्यूत में पराजित होकर द्रौपदी सहित पाण्डव जब वनवास प्रारम्भ करते हैं, उसी समय भगवान श्रीकृष्ण उनसे मिलने आते हैं। यह महाभारत वनपर्व के अन्तर्गत १२वाँ से ३७वाँ अध्याय अर्जुनाभिगमनपर्व शीर्षक के अन्तर्गत आता है।

१२वें से २२वें अध्याय में श्रीकृष्ण एवं पाण्डवों का वार्तालाप है। भगवान श्रीकृष्ण सर्वप्रथम द्यूत के दोषों का वर्णन करते हैं। तदुपरान्त द्यूत सभा के समय अपनी अनुपस्थिति का कारण बताते हैं। १२वें अध्याय में भगवान कहते हैं, जो दूसरे के साथ छल-कपट अथवा धोखा करके सुख भोग रहा हो, उसे मार डालना चाहिए, यह सनातन धर्म है। पार्थ ! तुम मेरे ही हो, मैं तुम्हारा ही हूँ। जो मेरे हैं, वे तुम्हारे ही हैं। जो तुमसे द्वेष रखता है, वह मुझसे भी रखता है। जो तुम्हारे अनुकूल है, वह मेरे भी अनुकूल है।

मैं सत्य प्रतिज्ञापूर्वक कह रहा हूँ कि तुम राजरानी बनोगी। कृष्णे! आसमान फट पड़े, हिमालय पर्वत विदीर्ण हो जाये, पृथ्वी के टुकड़े-टुकड़े हो जाये और समुद्र सूख जाये, किन्तु मेरी यह बात झूठी नहीं हो सकती।

१३वें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं – राजन ! (युधिष्ठर) यदि मैं पहले द्वारका या उसके निकट होता, तो आप इस भारी संकट में नहीं पड़ते। स्त्रियों के प्रति आसक्ति, जुआ खेलना, शिकार खेलना और मद्यपान करना, ये चार प्रकार के कामजनित दुख बताये गये हैं। शास्त्रों के निपुण विद्वान सभी परिस्थितियों में इन चारों को निन्दनीय मानते हैं। परन्तु द्यूत क्रीड़ा को तो जुए के दोष जाननेवाले लोग विशेषरूप से निन्दनीय समझते हैं। जुए से एक ही दिन में सारे धन का नाश हो जाता है। साथ ही जुआ खेलने से उसके प्रति आसक्ति होनी निश्चित है।

कुरुनन्दन ! ये तथा और भी बहुत से दोष हैं, जो जुए के प्रसंग में कटु परिणाम उत्पन्न करने वाले हैं। महाबाहो! मैं धृतराष्ट्र से मिलकर जुए के ये सभी दोष बतलाता। कुरुवर्धन! मेरे इस प्रकार समझाने-बुझाने पर यदि वे मेरी बात मान लेते, तो कौरवों में शान्ति बनी रहती और धर्म का भी पालन होता। राजेन्द्र ! भरतश्रेष्ठ ! यदि वे मेरे मधुर एवं हितकर वचन को सुनकर उसे न मानते, तो मैं उन्हें बलपूर्वक रोक देता। यदि वहाँ सुहृदनामधारी शत्रु अन्याय का आश्रय ले इस धृतराष्ट्र का साथ देते, तो मैं उन सभासद जुआरियों को मार डालता।

कुरुश्रेष्ठ! मैं उन दिनों आनर्तदेश (द्वारका) में ही नहीं था, इसलिए आपलोगों पर द्यूतजनित संकट आ गया। कुरुप्रवरपाण्डुनन्दन ! जब मैं द्वारका में आया, तब सात्यकि से आपके संकट में पड़ने का यथावत् समाचार सुना। राजेन्द्र! वह सुनते ही मेरा मन अत्यन्त उद्विग्न हो उठा और प्रजेश्वर! मैं तुरन्त ही आपसे मिलने के लिए चला आया।

१४वें अध्याय में युधिष्ठिर भगवान से पूछते हैं – श्रीकृष्ण जब यहाँ द्यूत का आयोजन हो रहा था, तब आप कहाँ थे। श्रीकृष्ण ने बताया, मैं उन दिनों शाल्व के सौम नामक नगराकार विमान को नष्ट करने के लिए गया हुआ था। धर्मराज ! युद्ध में सौम विमान तथा राजा शाल्व को नष्ट करके मैं पुनः द्वारका लौट आया। राजन यही कारण है कि मैं उन दिनों हस्तिनापुर में न आ सका। शत्रुवीरों के नाशक धर्मराज ! यदि मैं हस्तिनापुर में होता, तो जुआ नहीं होता या दुर्योधन जीवित नहीं रह पाता।

इसके पूर्व सभापर्व के ६८वें अध्याय में द्रौपदी के चीर हरण एवं भगवान द्वारा उनकी लज्जा-रक्षा का प्रसंग है। ४१वें एवं ४२वें श्लोक में द्रौपदी श्रीकृष्ण का मन ही मन चिन्तन करती हुए कहती हैं, हे गोविन्द ! हे द्वारकावासी श्रीकृष्ण। हे गोपांगनाओं के प्राणवल्लभ केशव ! कौरव मेरा अपमान कर रहे हैं, क्या आप नहीं जानते? हे नाथ! हे राम नाथ ! हे व्रजनाथ ! हे संकटमोचन जनार्दन ! मैं कौरवरूप समुद्र में डूबी जा रही हूँ, मेरा उद्धार कीजिए। तभी वस्त्रावतार होता है।

ततस्तु धर्मोऽन्तरितो महात्मा
समावृणोद् वै विविधैः सुवस्त्रैः।।४६।।

इसी समय धर्मस्वरूप महात्मा श्रीकृष्ण ने अव्यक्त रूप

शेष भाग पृष्ठ ३६३ पर

स्वतन्त्रता दिवस विशेष

आजादी के भूले-बिसरे गीत

डॉ. वन्दना खुशालानी

सेवानिवृत्त प्राचार्य, दयानन्द आर्य कन्या महाविद्यालय, नागपुर

'वन्दे मातरम्' राष्ट्रीय अभिव्यक्ति का एक जीवन्त घोष है। इस गीत के रचयिता बंकिमचन्द्र से जब पूछा गया कि क्या मात्र 'वन्दे मातरम्' बंग-दर्शन का पेट भरेगा? तब बंकिमचन्द्र ने उत्तर दिया था, ''इस गीत का मर्म तुम लोग नहीं समझ सकोगे। अगर २५ वर्ष जीवित रह गए, तो देखोगे कि इस गीत के पीछे सारा बंगाल पागल हो उठेगा।''

श्री हरिवंशराय बच्चन ने 'हमारा राष्ट्रीय गीत' शीर्षक लेख में स्वीकार किया था कि पाठशालाओं का काम आरम्भ होने से पूर्व 'वन्दे मातरम्' गीत गाया जाता था और इसे ही हम राष्ट्रगीत मानते थे। जब उन्होंने बंगाल पर अपनी कविता लिखी, उसमें भी इस गीत का उल्लेख किया था –

''वही बंगाल देख जिसे पुलकित नेत्रों से
भरे कंठ से गदगद स्वर में
कवि ने गाया राष्ट्रगान वह वन्दे मातरम्।''

बचपन से ही हमारी आँखों में जो भारतमाता की मूर्ति थी, उसी ने स्वतन्त्रता संग्राम में सबको एक सूत्र के रूप

में बाँधकर रखा था। हमारी माँ जैसी प्यारी धरती को बंदी बनाया हुआ था। इसलिए उस समय कोई भी विघटनकारी शक्ति चाहे साम्प्रदायिक हो या मजहबी, हमारे जोश को रोक नहीं सकती थी। किसी भी प्रान्त का योगदान स्वतन्त्रता के लिए कम नहीं था। महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी महाराज, गुरु गोविन्द सिंह, सुभाषचन्द्र बोस आदि हर प्रान्त के लिए आदरणीय थे। पराधीन भारत का प्रत्येक भाग हमें प्रिय था। भारतमाता की कल्पना ही मातृभूमि के लिए स्वतन्त्रता की आग प्रकट करती थी। इसलिए कहा गया था कि भारतमाता एक भूगोल ही नहीं, एक संस्कृति है। उसके कई क्रान्तिकारी पुत्रों ने विभिन्न धर्मावलम्बी तथा उत्तर से दक्षिण तक अलग-अलग प्रदेशवासी होने पर भी वन्दे मातरम् के उद्घोष के साथ हँसते-हँसते स्वतन्त्रता के संग्राम-काल में फाँसी के फंदे को चूम लिया था।

देश प्रेम की भावनाओं को जाग्रत करने का काम कई गुमनाम आजादी के तरानों ने भी किया है, जिनमें से कई पुस्तकें जब्त की गई और कई गीत नष्ट किए गए। ऐसा ही एक तराना था –

दे दे मुझे तू जालिम मेरा ये आशियाना
आरामगाह मेरी मेरा बहिश्त खाना।
मुझको न इस तरह का अब कोई मलाल होगा
गुलजार फिर बनेगा बदलेगा ये जमाना।।

यह गीत लिखनेवाला कोई और था और धुन बनाने वाला कोई और। गाने वाले वे थे, जो गली-गली इन गीतों को गाते हुए अंग्रेज सिपाहियों द्वारा पकड़े जाते थे। कागज के टुकड़ों पर ये गीत लिखे जाते थे, जिन्हें पकड़ने की शंका होते ही नष्टकर दिया जाता था। भारतीय नारियाँ भी पर्दे को तिलांजलि देकर शराब की दुकानों पर धरने देते हुए इन्हीं जब्त किए गए गीतों की पंक्तियाँ गुनगुनाती थीं –

उठो उठो हे स्वदेशवासी, नशे में डूबे रहोगे कब तक।
शराब पी पी खराब होकर गुलामगिरी सहोगे कब तक।

इस प्रकार के गीत सभी अनाम होते थे, अधिकतर अपना असली नाम छिपाकर किसी छद्म नाम या उपनाम से लिखे जाते थे। जैसे 'राष्ट्रीय आत्मा', 'त्रिशूल' उपनाम से भी कई राष्ट्रीय गीत लिखे गए, जो अँग्रेजों की दमन नीति के प्रति आवेशपूर्ण प्रतिक्रिया में लिखे गए थे। ऐसी ही कुछ पंक्तियाँ हैं –

हम उजड़ते हैं तो उजड़े पर वतन आबाद रहे।
हम गिरफ्तार हों तो हों पर वतन आजाद रहे।

त्रिशूल उपनाम से लिखी हुई ये पंक्तियाँ हैं।

आजादी के दौर में बहुत सारी रचनाएँ जो ब्रिटिश शासन द्वारा जब्त कर ली गई थीं, वे अब नष्ट हो चुकी हैं, किन्तु जो कुछ सुरक्षित बच गईं, उन्हीं में से कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं –

मैं देश आजाद कराऊँगा
कर दो मेरे तिलक भाल पर
मैं झंडा लेकर जाऊँगा।

दुख की बात है कि इन राष्ट्रीय जागरण के कवियों पर इतिहास के लेखकों की दृष्टि बहुत कम गई और उन्होंने कुछ नाम देकर ही राष्ट्रीयता की इस विकास-धारा को समेट लिया है। राष्ट्रीय धारा के गीतों की लोकप्रियता उस युग में किसी भी भाव से बढ़-चढ़कर थी, जो नवयुवकों के लिए स्वतन्त्रता के युद्ध में मर मिटने का पवित्र सन्देश लेकर आती थी। हजार-हजार कंठों से गूँजने वाले इन गीतों के कवियों का नाम इसलिए लोगों को पता नहीं था, क्योंकि उस युग में कविता महत्त्वपूर्ण थी, कवि नहीं। 'हितैषी' छद्म नाम से लिखी ये पंक्तियाँ अमर हैं –

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मरनेवालों का यही बाकी निशां होगा।

जुलूसों और प्रभात-फेरी में गाए जानेवाले गीत स्वतन्त्रता संग्राम की अनमोल पंखुड़ियाँ हैं, जिनमें हमारे जन-जन की बेचैनी और स्वतन्त्रता की आकांक्षा तथा उसके लिए संघर्ष करने की क्षमता और शत्रु को ललकारने का जोश मुखरित होता है –

कस ली है कमर हमने अब तो कुछ करके दिखाएँगे
आजाद ही हो लेंगे या सर को कटा देंगे।
हटने के नहीं पीछे डरकर कभी जुल्मों से
तुम हाथ उठाओगे, हम पैर बढ़ा देंगे।।

कुंवर प्रताप 'आजाद' इस गीत के रचयिता हैं। जोश मलीहाबादी द्वारा लिखित कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है –

'बवक्त का फरमान अपना रुख बदल सकता नहीं,
मौत टल सकती है अब फरमान टल सकता नहीं।'

धीरे-धीरे हमारे महापुरुषों के द्वारा राष्ट्रीय चेतना जन-जन में जगायी जा रही थी। सुभाषचन्द्र बोस की आजाद हिन्द फौज में भी कई राष्ट-प्रेम के गीत गूँजते रहते थे, जो उनकी फौज के बाहर भी बहुत चर्चित थे। तिरंगा फहराने का सपना सँजोनेवाले, भारत माँ के चरणों में सर्वस्व अर्पित करनेवाले नौजवान युवक-युवतियाँ हाथों में तिरंगा लेकर अनेक गीत गुनगुनाते थे। ऐसे छिटपुट किन्तु अमूल्य अनेक गीत हैं, जो असहयोग आन्दोलन, नमक सत्याग्रह, भारत छोड़ो आन्दोलन, बंग-भंग विरोधी आन्दोलन, किसान मजदूर आन्दोलन के समय जन-जन के मुख से सुने जाते थे। कुछ पंक्तियाँ हैं –

बाँध लें बिस्तर फिरंगी राज अब जाने को है,
जुल्म काफी कर चुके, पब्लिक बिगड़ जाने को है।

और भी –

दुखिया किसान हम हैं भारत के रहनेवाले
दाने बिना तरसते न्यामत परसने वाले।

करतार सिंह क्रान्तिकारी की ये पंक्तियाँ भी अविस्मरणीय है –

'मैं बंदा हिन्दवालों का, है हिन्दोस्तां मेरा
मैं हिन्दी, ठेठ हिन्दी, खून हिन्दी, जात हिन्दी हूँ
यही मजहब, यही फिरका, यही है खानदान मेरा,
यही बस इक पता मेरा यही नामो निशाँ मेरा।'

इन गीतों की विरासत हम सबको सम्भालनी है, तो इन गीतों को प्रकाशित कर, इन्हें गानेवाली नई पीढ़ी बनानी होगी, ताकि बलिवेदी पर अपना रक्त अर्पित करनेवाले वीरों के प्रति भी हम न्याय कर सकें और अनाम रहकर देश भक्ति की अलख जगानेवाले जो कवि थे, जिन्होंने भले ही मात्र तुकबन्दी वाली कविताएँ लिखीं, किन्तु इनकी उज्ज्वल परम्परा सदैव हमारे राष्ट्रभाव को जगाती रहेगी।

गुजरे हुए जमाने के वे तराने अब हमारी पहुँच के बाहर हैं, यदि उन्हें संकलित किया जाये, तो वे जीवित रहेंगे। आजादी के बाद कुछ तराना-लेखकों के नाम का उल्लेख कुछ प्रकाशकों ने अपने निजी प्रकाशनों में किया, जो प्रशंसनीय है, जैसे बिस्मिल, अशफाक उल्ला खाँ, चकबस्त, आजाद आदि। जो अंग्रेजों की आँख बचाते हुए गुप्त रूप से अपनी रचनाओं को छपवाते थे, वितरित भी करते रहे। ये रचनाएँ राष्ट्रीय लेखागार में मिल सकती हैं, किन्तु ऐसी विरासत सम्भालने के लिए लोगों के पास समय नहीं है। बिस्मिल की इन पंक्तियों को अवश्य पढ़ना चाहिए –

हम भी आराम उठा सकते थे घर पर रहकर,
हमको भी पाला था माँ-बाप ने दुख सह-सह कर,
नौजवानों जो तबियत में तुम्हारी भटके,

याद कर लेना कभी हमको भी भूले भटके।

देश प्रेम के इन गीतों के हर शब्द में उत्साह होते, युवक-युवतियों में प्राण फूँकने की शक्ति होती थी। चकबस्त की इन पंक्तियों पर प्रत्येक देशभक्त को गर्व है –

बुलबुल के गुल मुबारक, गुल को चमन मुबारक
हम बेकसों को अपना प्यारा वतन मुबारक।
गुँचे हमारे दिल के इस बाग में खिले हैं,
इस खाक से उठे हैं, इस खाक में मिलेंगे।।

राष्ट्रप्रेमी के लिये एक ही बात प्रमुख होती थी, भारत माता पराधीन है, उसे मुक्त करना है और इसकी मुक्ति ही साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद की आर्थिक दासता से मुक्ति है। इसी भाव से देशभक्त क्रान्तिकारी व्यक्तिगत स्वार्थ को तिलांजलि देकर फाँसी के तख्ते पर झूल जाते थे तथा राष्ट्रधर्म निभाने के लिए जीवनभर भी जेल में रहने के लिए कदम पीछे नहीं हटाते थे। अशफाक उल्ला खां की पक्तियों में यही बात है –

वतन हमेशा रहे साध काम और आजाद,
हमारा क्या, हम रहें, न रहें।
कुछ आरजू नहीं है, है आरजू तो ये है
रख दे कोई जरा ही खाके वतन कफन में।

स्वतन्त्रता संग्राम के बलिदानों को उजाकर कर शहीदों से प्रेरणा लेने के लिये कई पथ-नाट्य (नुक्कड़ नाटक) भी रचे गये। और इन नाटकों में कथानक के साथ ही जो गायकी होती थी, उसमें ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जन-मानस को परिचित कराया जाता था। एक गीत की झलक यहाँ प्रस्तुत है –

'दहशत से सब मजबूर हैं, लगता न ये किसी को बुरा।
सतधर्म पर जो चल रहा, अन्याय पापी का छुरा।।
ऐसा बनाया एक्ट, जो वीरन सहा जाता नहीं।
बंधन गुलामी के में अब, हम से सहा जाता नहीं।।
किस तरह पाओ फतह, तुम शान्ति के हथियार से।
भगवान ही रक्षा करें, अन्यायों के इन वार से।।'

इस प्रकार नुक्कड़ नाटकों में प्रासंगिक लोकगीत गाने की परम्परा को कलाकारों ने खूब निभाया और गली-गली में घूम-घूमकर गीत गाते हुए ये जेल जाने के लिए अपनी बिस्तर भी साथ में रखते थे। सुभाषचन्द्र बोस तथा 'झाँसी की रानी' शीर्षक जैसे पथनाट्यों ने मंच पर क्रान्ति की चेतना जगायी, अत: इन कलाकारों को हमारा नमन है। ○○○

(केन्द्र भारती जनवरी, २०२५ से साभार)

कविता

योगिराज अरविन्द

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गयाजी, बिहार

हे स्वर्णिम पथ के निर्माता, गर्वित तुम पर हिन्द ।
नमन हे नव-आलोक प्रदाता, योगिराज अरविन्द !

योगयुक्त जीवन के धारक, कर्मनिरत संन्यासी,
राष्ट्र-व्यथा से विगलित अन्तस्, सघन क्रान्ति अभिलाषी ।
भारत के स्वातन्त्र्य-समर में, अर्पित नित निर्द्वन्द,
नमन हे नव-आलोक प्रदाता, योगिराज अरविन्द !

आत्मतत्त्वदर्शी अखण्ड साधनामग्न उद्योगी,
चेतन-चित करुणा-उद्वेलित, जन-जन के सहयोगी ।
ले अध्यात्म-प्रदीप पधारे, जगती में सानन्द,
नमन हे नव-आलोक प्रदाता, योगिराज अरविन्द !

सत्साहित्य सृजनरत संतत, सत्य-सनातन वाहक,
जड़ता-कायरता कुंठित-भावों के शाश्वत दाहक ।
पौरुष-शौर्य-पराक्रम पूरित, वैरागी सुखकन्द,
नमन हे नव-आलोक प्रदाता, योगिराज अरविन्द !

अद्‌भुत प्रज्ञामण्डित, दुर्लभ मुक्तिमन्त्र के दाता,
गीता-छन्द व वेद-ॠचाओं के अनुपम उद्गाता ।
सहज समाधि समर्पित तन-मन ज्योतिर्मय स्वच्छन्द,
नमन हे नव-आलोक प्रदाता, योगिराज अरविन्द !

मोह-निशा के नाशक ॠषिवर, उज्ज्वल धवल प्रकाश,
तेरी आभा से आलोकित, धरणी और आकाश।
दिव्य-मधुर वाणी से तव, सम्मोहित सज्जन-वृन्द,
नमन हे नव-आलोक प्रदाता, योगिराज अरविन्द !

स्वतन्त्रता दिवस विशेष

देश-सेवा हेतु स्वार्थ, सुख-सुविधा का त्याग करें

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

(ब्रह्मलीन स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ, प्रयागराज के अध्यक्ष और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव थे। उन्होंने यह व्याख्यान १ दिसम्बर, २०१३ को रामकृष्ण सेवा मंडल, भिलाई में दिया था)

गाँधीजी के पास दो-तीन वस्त्रों के अतिरिक्त कुछ नहीं था। स्वामी विवेकानन्द के पास भी बहुत कम वस्त्र रहते थे। तो क्या गाँधीजी और स्वामी विवेकानन्द भिखारी थे? नहीं, ये भिखारी नहीं थे। इन्हीं के पास संसार की सबसे बड़ी सम्पत्ति थी। उनकी वह सच्ची सम्पत्ति थी – उनका चरित्र। उनका चरित्र ही देश को प्रेरणा देता है। उन लोगों में देश के प्रति त्याग करने की भावना थी। वे देश के लिये कुछ भी त्याग करने को तत्पर थे। जो भी व्यक्ति देश की सेवा करना चाहता है, उसे त्याग करना पड़ेगा। देश में बहुत से लोग सांसारिक सम्पत्ति से धनवान हैं, लेकिन बड़े आदमी नहीं हैं। क्योंकि उनमें देश के प्रति अपनी सुख-सुविधायें त्याग करने की क्षमता नहीं है।

छात्रों को पढ़ाई केवल परीक्षा पास करने के लिये नहीं, अपितु ज्ञान-अर्जन करने के लिये करना चाहिये। बाहर से दिखनेवाला सच्चा चरित्र नहीं है, व्यक्ति के अन्दर जो भावनायें हैं, जो दिखती नहीं हैं, विचार हैं, जो दिखता नहीं है, वह उसका सच्चा चरित्र है। पवित्रता केवल स्वच्छता नहीं है, वह विचार एवं भावना है। पवित्रता अर्थात् पवित्र विचार, पवित्र हृदय। पवित्र हृदय कब होता है? जब हमारे हृदय में दूसरों के प्रति अच्छी भावना होती है। मनुष्य विचारों से पवित्र होता है और पवित्र कार्य करता है। पवित्रता का पर्याय है, हम दूसरों के लिये जियें। स्वामी विवेकानन्द कहते थे, दूसरों के लिये जिओ। जो दूसरों के लिये जीता, वही जीता है, अन्य तो जीवन्मृत हैं। नि:स्वार्थ वही बन सकता है, जिसमें त्याग करने की भावना होगी। ठीक ऐसे ही यदि कोई चरित्रवान बनना चाहता है, तो उसे अपने मन का स्वामी बनना पड़ेगा। अपनी इन्द्रियों का दास, जैसे क्रोधी, लोभी आदि व्यक्ति चरित्रवान नहीं बन सकता। क्रोध की आदत मनुष्य के जीवन को नष्ट कर देती है। इसलिये मन में संयम रखें। स्वाभिमानी बनें। अँग्रेज का बच्चा-बच्चा स्वाभिमान से भरा रहता है। हमें भी विनम्रतापूर्वक निरहंकार होकर पूरे स्वाभिमान के साथ जीवन यापन करना चाहिये। अपने देश पर गर्व करना चाहिये और देश के लिये कोई भी स्वार्थ त्याग करने के लिये तत्पर रहना चाहिये। ○○○

पृष्ठ ३५९ का शेष भाग

से उसके वस्त्र में प्रवेश कर भाँति-भाँति के सुन्दर वस्त्रों द्वारा द्रौपदी को आच्छादित कर लिया।

महाभारत में कहीं उल्लेख नहीं है कि द्यूत सभा की छत पर श्रीकृष्ण प्रकट होकर अपने हाथ से चीर बढ़ाते जा रहे हैं। उल्लेख है कि श्रीकृष्ण अव्यक्त रूप से वस्त्र में प्रवेश कर जाते हैं, इसलिए कुछ ग्रन्थों में इसे भगवान का वस्त्रावतार भी कहा गया है। भगवान के समस्त अवतार चर प्राणी के रूप में हुए हैं, यथा मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह आदि, पर सम्भवत: वस्त्रावतार ही अचर (निष्प्राण) रूप में है। वस्तुत: भगवान का यह निराकार रूप में प्राकट्य था। श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं कि वे द्वारका से दूर युद्ध में रत थे, अत: द्यूत सभा में उपस्थित न हो सके। अत: उन्होंने अपनी शक्ति द्वारा वस्त्रावतार रूप का प्राकट्य किया, वस्त्रावतार निराकार स्वरूप ही है, क्योंकि भगवान द्यूत सभा में पारम्परिक साकार रूप में नहीं थे। ○○○

कृष्ण-जन्माष्टमी विशेष

श्रीकृष्ण चरित की महनीयता

स्नेह सिंघानिया

शोधार्थी, प्रबन्धशास्त्र विभाग, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, चेन्नई

पद्मपुराण में कहा गया है –

असारमेतद्भुवनं समस्तं, सारं हरेः पूजनमेव विप्र।
तस्मान्मनुष्यो निजमंगलैषी, भक्त्या यजेत्कृष्णमनन्तमूर्तिम्।।

– इस संसार में सब कुछ असार है, केवल भगवान श्रीहरि की सेवा-पूजा ही सार है। इसलिए यदि मनुष्य अपना मंगल करना चाहता है, तो उसे भक्तिपूर्वक अनन्त स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण की सेवा-पूजा करनी चाहिये ।

श्रीकृष्ण ऐतिहासिक पुरुष थे, इसका स्पष्ट प्रमाण 'छान्दोग्य उपनिषद्' में मिलता है। वहाँ कहा गया है कि ''देवकी पुत्र श्रीकृष्ण को महर्षिदेव कोटि आंगिरस ने निष्काम कर्म रूप यज्ञ उपासना की शिक्षा दी थी, जिसे ग्रहण कर श्रीकृष्ण 'तृप्त' अर्थात् पूर्ण पुरुष हो गए थे।'' श्रीकृष्ण का जीवन, जैसा कि महाभारत में वर्णित है, इसी शिक्षा से अनुप्राणित था और 'गीता' में उसी शिक्षा का प्रतिपादन उनके ही माध्यम से किया गया है। तैत्तिरीय आरण्यक, पाणिनि – अष्टाध्यायी, महाभारत तथा हरिवंशपुराण, विष्णुपुराण, ब्रह्मपुराण, वायुपुराण, भागवतपुराण, पद्मपुराण, देवी भागवत, अग्निपुराण तथा ब्रह्मवैवर्तपुराणों में उन्हें प्रायः भगवान के रूप में ही दिखाया गया है। इन ग्रन्थों में यद्यपि कृष्ण के अलौकिक तत्त्व की प्रधानता है, तो भी उनके मानव या ऐतिहासिक रूप के भी दर्शन यत्र-तत्र मिलते हैं। पुराणों में कृष्ण-सम्बन्धी विभिन्न वर्णनों के आधार पर कुछ पाश्चात्य विद्वानों को यह कल्पना करने का अवसर मिला कि कृष्ण ऐतिहासिक पुरुष नहीं थे। इस कल्पना की पुष्टि में अनेक तर्क दिये गये हैं, जो ठीक नहीं सिद्ध होतीं। यदि महाभारत और पुराणों के अतिरिक्त, ब्राह्मण-ग्रन्थों तथा उपनिषदों के उल्लेख देखे जायें, तो कृष्ण के ऐतिहासिक तत्त्व का पता चल जाएगा। जैन ग्रन्थ उत्तराध्ययन सूत्र में इन्हें बाइसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि का समकालीन बताया गया है। किन्तु मानवीय नायक के रूप में वासुदेव के दैवीकरण का सबसे प्राचीन सन्दर्भ पाणिनी के अष्टाध्यायी से प्राप्त होता है। परम्परानुसार वासुदेव कृष्ण का जन्म शूरसेन जनपद के अंधक वृष्णि संघ में हुआ था और महाभारत युद्ध के समय ये इस संघ के प्रमुख थे, पर कालान्तर में भागवत सम्प्रदाय के अनुयायियों ने उन्हें सर्वोच्च देवाधिदेव या परब्रह्म की स्थिति प्रदान कर दी। उल्लेखनीय है कि श्रीकृष्ण और व्रज के अनन्य सम्बन्ध और इसी व्रज क्षेत्र में उनके चरित को एक रूपक के माध्यम से एक भक्त इस प्रकार व्यक्त करता है –

ब्रज समुद्र मथुरा कमल, वृन्दावन मकरन्द।
बृज वनिता सब पाखुरी, मधुकर गोकुलचन्द।।

जहाँ तक कृष्ण चरित के विविध आयाम का प्रश्न है, तो इस सन्दर्भ में मेरा कहना है कि व्यावहारिक व आध्यात्मिक जगत के महानायक योगेश्वर श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व के इतने अधिक पहलू हैं, जिन्हें ज्ञानियों, भक्तों व योगियों ने अपने-अपने ढंग से समझने का प्रयास किया, फिर भी यह दावा नहीं किया जा सकता है कि श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व के सभी पहलुओं को समझ लिया गया है। वास्तव में प्रस्तुत सन्दर्भ में मैंने भी श्रीकृष्णचरित्र के विविध पहलुओं को उभारने का एक लघु प्रयास किया है।

ज्ञातव्य है कि इनके व्यक्तित्व का एक सर्वविदित पहलू यह था कि माता-पिता, परिवार एवं गुरु के प्रति दायित्व जिसका उन्होंने ठीक से पालन किया। एक ओर जन्मदात्री माँ देवकी व पिता वसुदेव को जेल से मुक्त कराकर पुत्र धर्म का निर्वाह किया, तो वहीं दूसरी ओर पालक माँ यशोदा व पिता नन्दबाबा को अपने प्रेम व कृत्य द्वारा गौरवशाली आसन पर आरूढ़ किया। इसी प्रकार अपने परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति अपने दायित्व को उन्होंने निभाया है। इन्होंने अपने गुरु सान्दीपनि को गुरुदक्षिणा के रूप में उनके मृत पुत्र को पुनः जीवित अवस्था में सौंपकर गुरु-शिष्य परम्परा

व धर्म का आदर्श-निर्वाह किया है।

कृष्ण के व्यक्तित्व का एक अन्य आयाम प्रेमी, सखा और आदर्श मित्र के रूप में देखा जा सकता है। गोपियों के साथ प्रेमीभाव जहाँ सर्वविदित है, वहीं अर्जुन के प्रति सखाभाव और सुदामा के साथ मित्र की भूमिका मानवीय व्यवहार का उच्चतम प्रतिमान है। उल्लेखनीय है कि गोपियों के साथ रचा गया महारास लौकिक न होकर पूर्णतः अलौकिक था। वस्तुतः इस महारास के द्वारा वे प्राणिमात्र को यह सन्देश देना चाहते थे कि सभी लौकिक वृत्तियों को छोड़कर भगवन्मय हो जाये, तो उसे अन्ततः भगवान की प्राप्ति होती है। वस्तुतः इस प्रकरण को एक दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। एक बार मीरा ने अपने वृन्दावन के दौरान श्री जीव गोस्वामी जी से मिलने के लिए अनुमति माँगी, तो संत जीव गोस्वामी जी ने यह कहकर मीरा से मिलना अस्वीकार कर दिया कि मैं किसी स्त्री से नहीं मिलता। इसके प्रत्युतर में मीरा ने यह सन्देश लिखकर भेजा –

परम पुरुष श्रीकृष्ण हैं, और सकल है नारि।
वृन्दावन दूजो पुरुष, को तुम कहो विचारि।।

अर्थात् इस वृन्दावन में एक मात्र पुरुष श्रीकृष्ण हैं और सभी नारी हैं, तो फिर वृन्दावन में दूसरा पुरुष होने का दावा करने वाले तुम कहाँ से आ गये? जैसे ही यह पंक्ति उन सन्त ने पढ़ा, उन्हें आत्म ज्ञान हो गया और मीरा के भक्तिभाव में डूब गये। महारास या गोपी-प्रेम का भाव कृष्ण के व्यक्तित्व का विभु व आध्यात्मिक पहलू है। एक ओर जहाँ श्रीकृष्ण ने अपने सखा अर्जुन का विपरीत से विपरीत परिस्थितियों में साथ देकर मानवता को एक धनात्मक संदेश दिया, वहीं अर्जुन को उसके कर्तव्य का बोध कराने के निमित्त जो विचार प्रस्तुत किया, वह गीता के रूप में हमारे सम्मुख विद्यमान है और यह अनन्त काल तक समस्त मानवता का मार्गदर्शक ग्रन्थ बना रहेगा। साथ ही सुदामा के साथ निभाया गया मैत्री व्यवहार बहुकोणीय एवं अत्यन्त व्यावहारिक दृष्टान्त है, जिसे हम सभी लोगों को अपने दैनिक व्यवहार में उतारना चाहिए और यदि हम ऐसा करेंगे, तो निश्चय ही प्राणिजगत के सौन्दर्य में वृद्धि होगी।

श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व का एक आयाम वैज्ञानिक, पर्यावरणविद् और प्रकृति प्रेमी के रूप में देखा जा सकता है। जब वे नन्दबाबा से हठ करके गोवर्धन की पूजा कराते हैं, तो निश्चय ही यहाँ उनका दृष्टिकोण पर्यावरण व प्रकृति प्रेमी के रूप में उभरकर सामने आता है। वस्तुतः गोवर्धन पर्वत पर ऐसी प्राकृतिक सम्पदा थी, जिससे गौ सम्वर्धन और अन्य आर्थिक गतिविधियाँ सम्पादित होती थीं। यहाँ कृष्ण का दृष्टिकोण अत्यन्त व्यावहारिक व समसामयिक है।

इसी प्रकार कालीयनाग को यमुना के कुण्ड से रमणक द्वीप भेजकर जल को विषमुक्त किया, जिसके फलस्वरूप यमुना का यह घाट गायों व अन्य जीव-जन्तुओं के लिए उपयोगी हो सका। हमारा अभिमत है कि यहाँ कृष्ण का पर्यावरण व प्रकृति प्रेम स्वतः स्पष्ट है। ध्यातव्य है कि समकालीन वैज्ञानिक खोजों से यह स्पष्ट हो गया है कि संगीत की मधुर स्वर लहरों से केवल मनुष्य ही आह्लादित नहीं होता है, अपितु पशु, पक्षी और पौधे भी स्वस्थ व पुष्ट होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि समकालीन दृष्टिकोण से कृष्ण-चरित के आयाम पर विचार करें, तो कृष्ण के द्वारा प्रकृति के आँचल में बाँसुरी-वादन का आध्यात्मिक और व्यावहारिक; दोनों पहलू दिखायी पड़ता है। व्यावहारिक पहलू में हम यह दिखा सकते हैं कि इनके बाँसुरी-वादन से पेड़, पौधों, गायों एवं अन्य जीव-जन्तुओं का किसी न किसी रूप में सम्वर्धन ही होता रहा है। यहाँ ध्यान रहे कि हमारे धर्मग्रन्थों में बाँसुरी के लिए तीन शब्दों का प्रयोग किया है – १. वंशी – इससे निकलने वाली स्वर लहरी की प्रकृतिगत उपयोगिता थी, फलतः इसके स्वर को व्यावहारिक स्वर कहा गया। २. वेणु – इसके स्वर को आध्यात्मिक स्वर कहा गया है ३. मुरली – जिसका स्वर सौन्दर्यबोधक है और अपने अद्भुत सौन्दर्य से कामदेव को भी फीका कर देती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नृत्यकला, संगीत, वैज्ञानिकता, पर्यावरण व प्रकृति-प्रेम कृष्ण के व्यक्तित्व का आयाम रहा है। साथ ही कृषि, इससे सम्बद्ध क्षेत्रों व ग्रामीण अर्थव्यवस्था के संवर्धनकर्ता के रूप में भी कृष्ण को देखा जा सकता है।

उल्लेखनीय है कि श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व का एक सर्वविदित पहलू यह है कि उन्होंने अर्जुन के माध्यम से समस्त मानवता को गीता का उपदेश दिया। वस्तुतः उपदेशक, अधर्म-विनाशक और धर्म-संस्थापन के रूप में इनके व्यक्तित्व का एक पहलू बनकर सामने आता है। भगवद्गीता भगवान कृष्ण द्वारा अर्जुन को बछड़ा बनाकर उपनिषद् रूपी गायों से दुहा गया अमृत दूध है, जिसे सुधी जन पीते हैं –

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।

स्पष्ट है कि गीता में ज्ञान का सन्देश, कर्म का सन्देश और भक्ति का सन्देश प्रस्तुत किया गया है। श्रीमद्भगवद् गीता में अध्याय १ से ६ तक कर्म की विवेचना, ७ से १२ तक भक्ति का सन्देश और १३ से १८ तक ज्ञान का सन्देश दिया गया है। अपने कर्म के सन्देश में श्रीकृष्ण कहते हैं –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।

अर्थात् तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो। इसी बात को प्रो. एम. हिरियन्ना ने इन शब्दों में स्पष्ट किया है – ''गीता कर्म के त्याग की बात नहीं करती, बल्कि कर्म में त्याग की बात करती है।'' कर्म के सन्दर्भ में कृष्ण का उपदेश समस्त मानवता के लिये अत्यन्त उपयोगी है। इसी प्रकार ज्ञान के सन्देश में वे कहते हैं – नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। अर्थात् इस संसार में ज्ञान से पवित्र कोई वस्तु नहीं है। साथ ही आगे वे कहते हैं – ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति। जबकि भक्तिपरक सन्देश के निचोड़ में वे कहते हैं कि –

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों को मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान, सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर। उल्लेखनीय है कि भक्ति की इसी समर्पण की अवस्था को एक शायर ने निम्न पंक्तियों से अपनी भावना को व्यक्त किया है –

मुझे सहज हो गयी मंजिले,(वो) हवा के रूख भी बदल गये।
तेरा हाथ, हाथ में आया, कि चिराग राह में जल गये।।

अर्थात् भगवत्कृपा से ज्योति मिल जाती है, सब कुछ सरल हो जाता है।

श्रीकृष्ण के चरित का एक विशिष्ट पक्ष समाजवाद के संस्थापक एवं नारी-अस्मिता के रक्षक के रूप में दिखता है। इनके समाजवादी व्यक्तित्व की छाप बाल्यकाल से लेकर अन्तिम समय तक रही है। बाल्यकाल में उन्होंने गोकुल पार मक्खन की प्रक्रिया रोककर समस्त ग्वालबालो के खाने-पीने के स्तर में गुणात्मक सुधार का काम किया। उन्होंने सामान्य जनों को महत्त्व दिया। वे नारी-अस्मिता की रक्षा और हर स्तर पर उनके मान को बनाये रखने के जीवनपर्यन्त संघर्ष करते रहे। माँ स्वरूप में देवकी व यशोदा को जहाँ गौरवान्वित किया, वहीं रुक्मिणी, सत्यभामा व जाम्बवती के साथ विवाह कर उनके सम्मान एवं स्वातन्त्र्य की रक्षा की। उनकी नारी के प्रति सकारात्मक एवं सम्मानपूर्ण व्यवहार की चरम परिणति तब होती है, जब भौमासुर का वध कर सोलह हजार राजकन्याओं को स्वयं अपनाया, क्योंकि यदि ये स्वयं नहीं अपनाते, तो परायी जगह रहने के कारण तत्कालीन समाज उन्हें तिरस्कृत ढंग से देखता। किन्तु कुछ आलोचकों ने चीरहरण प्रसंग की नकारात्मक व्याख्या की है और नारी के प्रति किये गये अन्य कार्य के विपरीत चीरहरण प्रसंग को अनुचित कहा है। इस सन्दर्भ में मेरा अभिमत है कि किसी सरोवर या नदी में बिना वस्त्र के स्नान करना अमर्यादित माना जाता है। वे सूर्य नमस्कार प्रकरण के माध्यम से यह सन्देश देना चाहते हैं कि प्रेम में पूर्ण समर्पण होना चाहिये, क्योंकि अलौकिक प्रेम की यह माँग है।

श्रीकृष्ण-चरित्र का एक और महत्त्वपूर्ण आयाम कुशल योद्धा, रणनीतिज्ञ, व्यवस्थापक एवं राजनेता के रूप में देखा जा सकता है। वास्तव में उनका सम्पूर्ण जीवन दर्शन इस बात का स्पष्ट दृष्टान्त प्रस्तुत करता है कि वे कुशल योद्धा एवं रणनीतिज्ञ थे। पूतना-वध, अरिष्टासुर-वध, कंस-वध, जरासन्ध को १७ बार युद्ध में पराजित करना, रुक्मिणि-विवाह के समय शिशुपाल एवं अन्य राजाओं को पराजित करना आदि ऐसे दृष्टान्त हैं, जो यह प्रमाणित करते हैं कि वे कुशल योद्धा एवं रणनीतिज्ञ थे। किन्तु भागवत पुराण के कुछ व्याख्याकार कृष्ण का मथुरा छोड़कर द्वारकापुरी में बसने की घटना को नकारात्मक अर्थ में लेते हैं तथा कृष्ण पर जरासन्ध के भय से पलायनवादी होने का आरोप लगाते हैं। किन्तु मेरा अभिमत है कि इस घटना को व्यष्टिपरक अर्थ में न लेकर उनके सम्पूर्ण जीवन-प्रवाह के सन्दर्भ में देखें, तो उपर्युक्त व्याख्याकारों की बात गले नहीं उतरती है। वस्तुतः कंस वध के पश्चात् उग्रसेन को गद्दी पर बैठाना, शिशुपाल-वध के पश्चात् उसके राज्य को उसके पुत्र को सौंपना और संघर्षमय जीवन के पर्याय पाण्डवों का निरन्तर साथ देना और सम्पूर्ण महाभारत युद्ध में उनकी भूमिका तथा गीता का सन्देश इस बात का पूर्ण तार्किक आधार प्रस्तुत करते हैं कि वे पलायनवादी नहीं थे। सच तो यह है कि वे मानव-प्रयत्न की महिमा को सार्थकता

प्रदान करने के लिये ही मथुरा से द्वारकापुरी गये।

श्रीकृष्ण एक कुशल व्यवस्थापक और राजनेता थे। एक नये नगर द्वारिकापुरी की स्थापना इस बात का पुष्ट आधार प्रदान करता है कि वे एक कुशल व्यवस्थापक थे। इस सन्दर्भ में अनेक दृष्टान्त देखे जा सकते हैं। यदि हम राजनेता के रूप में उनकी भूमिका को देखें, सम्पूर्ण महाभारत उन्हीं के इर्द-गिर्द घूमता दिखता है। स्पष्ट है, एक राजनेता के रूप में उन्होंने अपनी भूमिका का कुशल निर्वहण किया है। उन्होंने बड़ी ही कुशलता से भीष्म, द्रोण, कर्ण, दुर्योधन जैसे महारथियों का वध कराकर कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में अपनी स्थिति को अक्षुण्ण रखा।

किन्तु कुशल राजनीतिज्ञ और धर्मसंस्थापक के रूप में उनकी भूमिकाओं को विवेचित करने पर स्पष्ट विरोध दिखायी पड़ता है। इसी विरोधाभास को पं. दीनदयाल उपाध्याय ने अपनी पुस्तक 'राष्ट्र जीवन की दिशा' में कुछ इस प्रकार रखा है – ''भीष्म को मारने के लिये शिखण्डी को खड़ा किया गया, द्रोणाचार्य को युद्ध में समाप्त करने के लिए युधिष्ठिर ने झूठ बोला, कर्ण तब मारा गया, जब वह अपने रथ का पहिया उठाने का अवसर माँग रहा था, जयद्रथ की मृत्यु का कारण सूर्य का बादलों में छिपना और दूर्योधन की मृत्यु भीम द्वारा कमर से नीचे गदा मारने से ही हुयी। इस आधार पर पूछा जा सकता है कि पाण्डवों की जीत के लिये ये सभी छल-कार्य जो हुए, क्या उन्हें धर्मानुकूल कहा जायेगा?'' स्पष्ट है इन सभी कार्यों को कराने व प्रेरित करने में उस कृष्ण की भूमिका रही, जिसे स्वयं श्रीकृष्ण ने गीता के उपदेश में कहा है –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

अर्थात् धर्म की स्थापना और अधर्म के विनाश के लिये युग-युग में मैं अवतार लेता रहता हूँ। वस्तुत: श्रीकृष्ण के उपरोक्त कार्य गीतोक्त कथन के सन्दर्भ में बाह्य रूप से परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं, किन्तु हमारा अभिमत है कि यह विरोध वास्तविक नहीं, बल्कि सतही है। इस बात को समझने के लिये कौरव व पाण्डव पक्ष पर पैनी दृष्टि डालनी होगी। वस्तुत: दोनों पक्षों में एक मूलभूत अन्तर है, वह यह है कि कौरव पक्ष का प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तिवादी था और इसलिए अनर्थ का साथ दे रहा था। कौरव पक्ष का प्रत्येक महारथी अपने 'मैं' के लिये लड़ रहा था और इनका कोई समष्टिगत लक्ष्य नहीं था। भीष्म का शिखण्डी के सामने अस्त्र न उठाने की अपनी प्रतिज्ञा, कर्ण दानवीरता के क्षेत्र में 'मैं', द्रोण का निजी पुत्रमोहादि आदि प्रसंगों में इनके पराजय का कारण 'मैं' था। जबकि पाण्डव पक्ष ने अपने-अपने 'मैं' को त्यागकर समष्टिगत लक्ष्य के लिये कार्य किया। कृष्ण सहित पाण्डव कई बार अपनी प्रतिज्ञाओं से विचलित हुए। इसलिए समष्टिवादी विचार धर्म का पक्ष हुआ और 'मैं' का विचार या व्यक्तिवादी विचार अधर्म का पक्ष हुआ। ध्यातव्य है कि योगेश्वर कृष्ण ने कई बार अपने कृत्य द्वारा यह सन्देश देने का काम किया है कि 'मैं' या अहंकार को त्यागो, तो निश्चय ही परमपद को प्राप्त होगे। इस बात का स्पष्ट दृष्टान्त राजसूय यज्ञ में सभी अतिथियों के पैर धोना, आदिवासी महिला के साथ विवाह करना व कुब्जा का उद्धार करना आदि है।

यदि गीता का सन्दर्भ देखें, तो श्रीकृष्ण ही समस्त जीवन व जगत के अधिष्ठान व स्रष्टा हैं। कण-कण में व्यक्त पूर्ण इकाई हैं। आप ही परब्रह्म हो, आप ही एक मात्र सत्य पूर्ण सर्वशक्तिमान सत्ता हो, जैसा कि बृहदारण्यक उपनिषद में कहा गया है कि –

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

जिस प्रकार कण-कण में व्याप्त एक मात्र परम सत्ता तू ही है, कृष्ण ही है और इसका दर्शन अज्ञान के आवरण के हटने के उपरान्त ही होता है। किसी ने कहा है –

तू ही तू नजर आये, जिधर देखू उठा के आँख।
तेरे जलवे के सिवा पेशे नजर कुछ भी न हो।।

अद्वैत वेदान्ती मधुसूदन सरस्वती वृन्दावन आगमन पर परम तत्त्व श्रीकृष्ण के सगुण स्वरूप का वर्णन निम्न पंक्तियों के माध्यम से व्यक्त करते हैं, जो एक परम ज्ञानी भक्त की उच्चतम अभिव्यक्ति है, जो श्रीकृष्ण चरित्र के आयाम की पूर्णता व दिव्यता को व्यक्त करती है –

वंशीविभूषित-करान्नवनीरदाभात्।
पीताम्बरादरुणबिम्ब-फलाधरोष्ठात्।।
पुर्णेन्दु सुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्।
कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने।।

○○○

श्रीरामकृष्ण-स्तुति–४

रामकुमार गौड़, वाराणसी

(तर्ज – भए प्रगट कृपाला, दीनदयाला...)

जय जय पुरुषोत्तम, ब्रह्म-सुखोत्तम,-लीन रहे जग आई।
धरि मानव विग्रह, करो अनुग्रह, धर्म-सार समझाई ।
निज इष्ट अनूपा, रुचि-अनुरूपा, भक्तन दरश कराई ।
रहि मातृभावमय, देत वराभय, करुणा-रत्न लुटाई।।२९।।
जय जय जगपावन, तमोविनाशन, अतिप्रिय भावतरंगा।
रहि अगणित भावा, हरिगुण-गावा, पंचवटी-तट-गंगा।
जब गंग नहाते, हरि-गुण-गाते, तेजोमय श्रीअंगा।
देखहिं सब तट-जन, रहहिं चकित मन, मानहिं हरि, श्रीरंगा।।३०।
जय जय अघहारी, दीनोद्धारी, पतितपावन नरदेवा।
प्रभु-भक्ति पुनीता, पाई अभीता, भक्त करै पद-सेवा ।
करि तन-मन-अर्पण, भक्ति-समर्पण, देखै छवि हृदि-देवा।
रहि तव प्रिय भक्ता, पद-अनुरक्ता, जपै नाम प्रभुदेवा।।३१।।
जय जय जगव्यापी, तारक-पापी, करि शुभ कीर्तन-गाना।
सुनि प्रभु गुण-ग्रामा, होइ अकामा, मन तजै अवगुण नाना ।
होकर शरणागत, मिटहिं मनोगत, शूल-मोह-मद-माना।
करो कृपा नाथ ! हे जगन्नाथ ! मन लीन रहे गुणगाना।।३२।।
जय जय अघनाशक, बुद्धि-प्रकाशक, अन्तर-निर्मलकारी।
तव गुणानुवादा, मिटै विषादा, हे भक्तन-भय-हारी ।
तजि विषय-सुखाशा, करि विश्वासा, हे दीनन-हितकारी ।
प्रभु-शरण जो आया, भक्ति-सुछाया, पाया जगदुखहारी ।।३३।।
जय जय जगपालक, मोहि निज बालक, जानि हरो अज्ञाना।
हे करुणा-अन्तर ! मैं अति कातर, करन चहों गुणगाना।
अति निर्मल भावा, रखि चित चावा, रहौं, विगत अभिमाना।
मन हरि-पद-लीना, भक्ति-अधीना, करै सदा प्रभु-गाना ।।३४।
प्रभु अमृतबानी, सबसुख-खानी, मनोरोग करै नाशा ।
मन परम सुखारी, पद-बलिहारी, देखि कंज-मुख-हासा।
अति रम्य बदन-छवि, निरखत ही कवि, के अन्तर-सुख भासा।
तन-सुधबुध खोई, मतिमल धोई, बैठा प्रभु पद-पासा ।।३५।।
अद्भुत सुरमानव, ब्रह्म-सुधार्णव, प्रभुमय सब जग द्रष्टा।
जगजननी-भावा, बाल-स्वभावा, रहे जगत में स्रष्टा।
जगनारि अशेषा, भगवति-वेशा, मानि आचरण कीन्हा ।
करि हरि-गुण कीर्तन, तन्मय नर्तन, भक्तन को सुख दीन्हा ।।३६।
कालीपदकमला, चिन्मय अमला, भक्ति पाइ सुखरूपा ।
करिलाभ समाधी, विगत उपाधी, भावमुखी रसरूपा ।
मन नित हरिसंगा, करि सत्संगा, भक्तन सहज स्वरूपा।
जो सतत प्रकाशा, मृदु मुख-हासा, उर छवि बसै अनूपा।।३७।
हरिनाम-प्रतापा, भगवत्-जापा, कटहिं विघ्न अति भारी ।
अनुपम विश्वासा, नाम-प्रकाशा, अघ-रजनी-तम-हारी ।
गति देखि गिरीशा, प्रभु जगदीशा ! आया शरण तुम्हारी ।
करो कृपा नाथ ! मैं अति अनाथ, दो चरणभक्ति अविकारी ।।३८।
तव अनुपम चरिता, भक्ति-सुसरिता, अवगाहै जग सारा ।
पावै मणि-मोती, साधन-ज्योती, नहीं रहै पथहारा ।
जो जग दुखरूपा, सोइ सुखरूपा, होइ, कटै भव-कारा ।
नहिं दुख लवलेशा, विगत-कलेशा, पाइ परमपद न्यारा।।३९।।
रहि सुरसरि-तीरा, हे मतिधीरा! किए चरित सुखधामा ।
दक्षिणेश्वर नामा, थल अभिरामा, जहाँ वसति माँ श्यामा ।
उपवन मनहारी, सुरभि-प्रसारी, मन्दिर नयनाभिरामा।
रहते अघहारी, हृदय-विहारी, परमहंस छविधामा।।४०।।

नरेन्द्र नाथ दत्त से मिलन

जब नरेन्द्रनाथा, प्रभु गुण-गाथा, सुनि दक्षिणेश्वर आए ।
देखा नारायण, ध्यान परायण, ऋषि भूतल पर आए ।
निज लीलासहचर, मिलि जगगुरुवर, अति अन्तर-सुख पाए ।
कहि सकै न कवि,अति विमल मिलन-छवि, उपमा खोजि लजाए।४१।
जब होइ नतमाथा, नरेन्द्रनाथा, कियो प्रश्न अति गूढ़ा ।
हे विप्र महाशय!, मोहि अति संशय, ईश्वर-तत्त्व निगूढ़ा ।।
क्या भगवत्-दर्शन, करि निज जीवन, धन्य किए हे स्वामी !
बोले तब प्रभु, 'देखूँ नित हरि विभु, चिन्मय अन्तर्यामी' ।।४२।।
करि ईश्वर-दर्शन, चरण-स्पर्शन, बातचीत, परिहासा ।
देखूँ नित ईश्वर, हरि जगदीश्वर, ज्यों तुमको अति पासा ।।
हरिचरित सो जानै, जो दृढ़ मानै, करि श्रद्धा-विश्वासा ।
तजि कंचन-कामा, जपि हरि-नामा, होई चरणन-अनुदासा ।।४३।।

उपमा और रूपक

ज्यों घाट अनेका, पुष्कर एका, पथिक आइ बहुभाषी ।
कहें वाटर, अकवा, पानी अथवा, जल के सब अभिलाषी ।
त्यों ईश्वर एका, नाम अनेका, अल्ला, गॉड कहाहीं।
साधक बहु-रूपा, रुचि-अनुरूपा, प्रभु-अनुभूति कराहीं ।।४४।।
दिन में नहिं तारे, परत निहारे, जदपि रहहिं नभ छाई ।
कारण इक माया, नर भरमाया, हरि नहिं परत दिखाई ।
जो अस उपदेशा, धरि नर-वेशा, त्रिभुवनपति होइ आई ।
सो प्रभु तव रूपा, विमल अनूपा, बसै हृदय मम आई ।।४५।।

स्वतन्त्रता दिवस विशेष

कर्नाटक के कित्तूर की क्रान्तिकारिणी रानी चेन्नाम्मा

रीता घोष, बैंगलुरु

भारत के दक्षिण प्रान्त में स्थित कर्नाटक भारत का ६वाँ बड़ा राज्य है। यह राज्य अपनी अत्यन्त प्राचीन विरासत शिक्षा-संस्कृति, लोक-कला, संगीत, नृत्य-वादन आदि सभी क्षेत्रों में अद्वितीय निपुणता के कारण भारत के इतिहास में अपना एक विशेष स्थान रखता है।

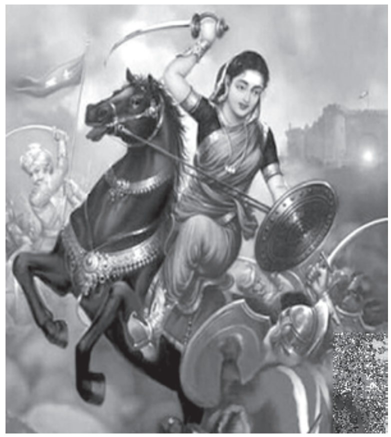

प्राचीन कर्नाटक का संक्षिप्त विवरण – (राजनैतिक परिस्थिति) कर्नाटक में पाषाण युग की संस्कृति पाए जाने के कारण यहाँ की संस्कृति को हाथ-कुल्हाड़ी संस्कृति का धरोहर भी कहा जाता है। कई सुविख्यात राजवंशों के उत्थान-पतन का साक्षी रहा है – कर्नाटक। नन्द, मौर्य, कदम्ब, बादामी, चालुक्य आदि राजवंशों के पतन के पश्चात् यहाँ मराठाओं का शासन रहा। विजयनगर साम्राज्य कर्नाटक का अन्तिम साम्राज्य रहा। मराठाओं ने मुगलों से संघर्ष के बाद कर्नाटक पर विजय प्राप्त की तथा अपना शासन स्थापित किया। तदनन्तर मराठा साम्राज्य के अवसान होते-होते यहाँ ब्रिटिश शासन, ईस्ट इण्डिया का अधिकार हो गया।

१७वीं-१८वीं शताब्दी में छत्रपति शिवाजी के नेतृत्व में मराठों ने कर्नाटक के अधिकांश भाग पर अपना अधिकार कर लिया था। शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् १६८० ई. में उनके बेटे छत्रपति सांभाजी को गद्दी विरासत में मिली, पर उनका शासन अधिक दिनों तक न चला। १६८९ में मुगल सम्राट औरंगजेब ने आक्रमण कर उन्हें पकड़ लिया तथा बाद में उन्हें फाँसी दे दी गई। इसके पश्चात् भी मराठाओं ने कर्नाटक पर अपना शासन बनाए रखा। १८१८ ई. तक कर्नाटक पर मराठाओं का वर्चस्व रहा। विजय नगर साम्राज्य के पतन के पश्चात् १७-१८वीं शताब्दी में मैसूर एक स्वतन्त्र राज्य बन गया। कृष्णराज वोडेयार द्वितीय की मृत्यु के बाद मैसूर सेना के प्रधान सेनापति 'हैदरअली' ने इस क्षेत्र पर अपना आधिपत्य जमा लिया। हैदरअली की मृत्यु के बाद राज्य का शासन 'टीपू' को सौंप दिया गया, जो 'टीपू सुल्तान' के नाम से प्रसिद्ध हुए। 'टीपू सुल्तान' साहसी और पराक्रमी थे। 'मैसूर के बाघ' नाम से परिचित टीपू सुलतान अँग्रेजों के बढ़ते कदम को रोकने तथा राज्य हड़पने की नीति के विरुद्ध अँग्रेजों से चार महत्त्वपूर्ण युद्ध लड़े। दुर्भाग्यवश अन्तिम युद्ध में उनकी मृत्यु हो गई और मैसूर राज्य ब्रिटिश राज की एक रियासत में सम्मिलित हो गई।

भारत की प्राकृतिक समृद्धि तथा मूल्यवान सांस्कृतिक धरोहर सदियों से भारतेतर देशों के लिए आर्कषण का केन्द्र बना हुआ था। इसलिये बारम्बार भारत की भूमि पर विदेशियों की घुसपैठ होती रहती थी। यहाँ के मूल निवासियों को सदियों से इन आक्रमणकारियों से अपनी रक्षा के लिये तथा अपनी स्वायत्तता-प्रभुता को बनाए रखने के लिए संघर्ष करना पड़ता था। कर्नाटक के निवासियों का जीवन भी सतत संघर्षमय था। यहाँ के लोग राजनीति से सुपरिचित तथा सक्रिय होते थे। अपनी स्वतन्त्रता को बनाए रखने के लिए उन्होंने कभी भी विदेशियों से समझौता नहीं किया।

कर्नाटक का राजनीतिक भू-भाग विचित्र था। इसका आधा भाग देशीय राजाओं के शासन में अधिकृत था। किन्तु इसके चारों ओर अँग्रेजों का साम्राज्य-क्षेत्र क्रमश: बढ़ता जा रहा था। अँग्रेज शासक कर्नाटक को ग्रास करने के लिए विभिन्न प्रकार के दबाव बनाते रहते थे। इसलिये उन दोनों के मध्य अविरत संग्राम चलता रहता था। क्षेत्रीय भिन्नताओं के होते हुए भी कर्नाटकवासी अँग्रेजों के बढ़ते कदमों को रोकने का सतत प्रयास करते रहते थे। कनार्टक का इतिहास ऐसे ही संग्रामी शासकों, विद्वानों एवं साहसी योद्धाओं से परिपूर्ण है। यह राष्ट्रीय तथा स्वदेश-चेतना को भलिभाँति दर्शाता है।

बहुत कम लोगों को यह विदित है कि अँग्रेजों के विरुद्ध

अधिकतर विद्रोह दक्षिण भारत की भूमि पर हुये। दक्षिण की भूमि पर अधिकार करने की होड़ में अँग्रेज शासक वहाँ के स्थानीय व्यवसाय तथा कृषि जैसे आवश्यक व्यवस्थाओं को नष्ट करने में तत्पर हो गए थे, ताकि ब्रिटिश अर्थव्यवस्था को भारत में बढ़ावा दिया जा सके। उनका एकमात्र लक्ष्य यह था कि किस प्रकार से अधिकाधिक राजस्व लूटा जा सके। परन्तु कर्नाटक को अधीन करना इतना सहज नहीं था। ब्रिटिश सरकार की नीतियों का विरोध यहाँ न केवल पुरुष शासकों ने किया था, अपितु कई महिला शासकों ने भी कठोरता से विरोध किया। अंग्रेजों की शक्ति के आगे वे न तो नतमस्तक हुए, न ही भयभीत बल्कि उनलोगों ने शस्त्र उठाकर युद्ध करते हुए अपने जीवन का बलिदान दिया। स्वाधीनता संग्राम के विस्फोट की प्रथम अग्निवर्षा दक्षिण के इसी क्षेत्र में धधक उठी थी।

कित्तूर राज्य – कित्तूर राज्य मैसूर के उत्तर में एक छोट-सा स्वतन्त्र राज्य था। छोटा होने पर भी यह समृद्ध एवं सम्पन्न राज्य था। इस राज्य में हीरे-जवाहरात का बाजार लगता था, जिसमें व्यापार करने के लिए सुदूर क्षेत्रों से व्यापारी आया करते थे। कित्तूर की समृद्धि से लालची ब्रिटिश सरकार जलने लगी। इसके खजाने को लूटने और इसे हड़पने के लिए अंग्रेज उन्मत्त हो उठे। वे लोग कित्तूर पर आक्रमण कर उसे दबोचने के लिए विभिन्न योजनाएँ बनाने लगे। यहाँ की जनता और शासक अंग्रेजों की इस चाल को ठीक से समझते थे। अत: प्रतिकूल परिस्थिति का सामना करने के लिए राज्य सदा सजग रहता था।

कर्नाटक के स्वाधीनता संग्राम में नारियों का योगदान – कर्नाटक के २०० वर्षों के इतिहास का पर्यवेक्षण करने पर ऐसी कई नारियों के नाम मिलते हैं, जिन्होंने अपने स्वराज्य तथा स्वाभिमान की रक्षा के लिए डटकर विदेशी शत्रुओं का सामना किया। इनके अदम्य साहस तथा नेतृत्व की तुलना भारतीय इतिहास में विरल है।

कर्नाटक के राजनीतिक इतिहास में गाँधी-कालीन से पूर्व अर्थात् १९२० के पूर्व कई सशक्त नारियाँ थीं, जिन्होंने अपने कुशल शासन, सैन्य-संचालन तथा युद्ध-कौशल से ब्रिटिश सरकार की नाक में दम करके रखा था। कहा जाता है कि कई बार जो कार्य पुरुष नहीं कर पाते, वह काम नारी बड़ी सहजता से कर देती है। इसकी सत्यता कर्नाटक के संग्राम के इतिहास से प्रमाणित होती है। नारी ने अनेक बार आवश्यकतानुसार कोमलता के आवरण को त्यागकर कठिन से कठिनतम परिस्थितियों में स्वयं को सशक्त योद्धा प्रमाणित किया है।

भारतीय संस्कृति में नारी को ब्रह्म की शक्ति माना जाता है। शक्ति-पूजा भारतीय संस्कृति का आधार है। दुर्गासप्तशती में वर्णन है। असुरों के अत्याचार से त्रस्त देवताओं की स्तुति से आद्या शक्ति नारी रूप में प्रकट होती है और देवताओं द्वारा प्रदत्त अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित देवी असुरों का वध कर समस्त लोकों में शान्ति स्थापित करती हैं। इसी प्रकार इस भारतभूमि पर जब-जब शत्रुओं ने अत्याचार की सीमा का अतिक्रमण किया, तो भारतीय नारी अपने शक्ति-स्वरूप में जाग्रत हो उठी तथा शत्रुओं का सामना करने के लिए अस्त्र धारण कर अपने अदम्य साहस का परिचय दिया।

स्वामी विवेकानन्द ने भी भारतीय नारी की शक्ति पर पूर्ण आस्था व्यक्त करते हुए कहा है, ''भारतीय नारी अबला नहीं, बल्कि सबल, प्रबल शक्तिरूपिणी है।'' भारत के प्राचीन इतिहास के पृष्ठों पर यदि दृष्टिपात किया जाए, तो यहाँ कई ऐसी शक्तिशाली सक्षम नारियों के उल्लेख मिलते हैं, जिन्होंने पुरुषों के समकक्ष रणांगन में लड़कर अपने शौर्य और पराक्रम का आदर्श स्थापित किया है। इसलिए कहा जाता है कि नारी की कोमलता को उसकी दुर्बलता नहीं समझनी चाहिए।

कर्नाटक में १९२० के पूर्व कई संग्रामी महिलाएँ हुईं, जिन्होंने स्वभूमि की रक्षा के लिए आत्मबलिदान देकर दक्षिण के इतिहास में अपना नाम अमर कर लिया है। इनमें बलावड़ी मल्लाम्मा, अब्बाक, रानी चिन्नाम्मा तथा रानी वीराम्मा आदि कई प्रसिद्ध महिला-शासकों का नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

कित्तूर राज्य की रानी चेन्नाम्मा – जिस प्रकार उत्तर भारत में झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई तथा इन्दौर की अहिल्या बाई का नाम उनकी वीरता तथा स्वाभिमान के लिए प्रसिद्ध है, ठीक उसी प्रकार दक्षिण भारत के कित्तूर राज्य की रानी चेन्नाम्मा का नाम उनके साहस, रणकौशल तथा स्वराज्य प्रेम के लिए प्रसिद्ध है। परन्तु रानी चेन्नाम्मा प्रथम क्रान्तिकारिणी हैं, जो १७-१८वीं शताब्दी की महिला-शासक रहीं और अँग्रेजी शासन के विरुद्ध विद्रोह की आवाज उठाई थीं।

१७७८ ई. में कर्नाटक के एक छोटे से गाँव 'काकाती' (जो अभी चेलागामी में स्थित है) के एक लिंगायत समुदाय में चेन्नाम्मा का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम 'गुलाप्पा गौड़' था तथा माता का नाम 'पद्मावती' था। बचपन में उन्हें संस्कृत, उर्दू, मराठी आदि कई भाषाओं की शिक्षा प्राप्त हुई। उनके परिवार की प्रथानुसार बचपन से ही उन्हें अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा भी दी गयी। अत्यन्त अल्पायु में ही चेन्नाम्मा ने घुड़सवारी, तीरन्दाजी, तलवारबाजी आदि कलाओं में निपुणता प्राप्त कर ली। अनुपम सौन्दर्य के साथ सच्चरित्रता ने उन्हें असामान्य प्रतिभा का धनी बना दिया।

चेन्नाम्मा का जीवन रोचक घटनाओं से परिपूर्ण था। जब वह मात्र किशोरी वय की थीं, तब एक बार उन्होंने एक भयंकर शेर को तीर से मार डाला था। इसी समय वहाँ विधि-वशात् राजा मल्लसरजा भी पहुँच गये। उन्होंने भी उसी शेर पर बाण चलाया था। चेन्नाम्मा का बाण शेर के गले में गहराई तक लगने से शेर को मारने का गौरव चेन्नमा को प्राप्त हुआ।

इन घटना ने देशाई परिवार के राजा मल्लसरजा को बहुत प्रभावित किया। चेन्नाम्मा के सौन्दर्य एवं वीरता से मन्त्र-मुग्ध राजा मल्लसरजा ने चेन्नाम्मा के पिता से मिलकर स्वयं से उनकी पुत्री के विवाह का प्रस्ताव रखा। यद्यपि मल्लसरजा की एक वर्तमान पत्नी थी। उनका नाम रूद्राम्मा था तथा उनका एक पुत्र भी था जिसका नाम शिवलिंगप्पा था। परन्तु उन दिनों एक से अधिक पत्नी का होना सामान्य बात थी। अत: चेन्नाम्मा के पिता-माता इस विवाह के लिए सहर्ष प्रस्तुत हो गए। मल्लासरजा से परिणय के बाद चेन्नाम्मा कित्तूर की रानी बन गई। अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और समझदारी के कारण चेन्नाम्मा शासन कार्यों में भी राजा की सहायता करने लगी।

१८वीं सदी के अन्त में पूने के पेशवा तथा मैसूर के टीपू सुल्तान के मध्य प्राय: युद्ध चलता रहता था। इस युद्ध और अशान्ति का प्रभाव कित्तूर राज्य पर भी पड़ता था। क्योंकि कित्तूर मैसूर से लगा हुआ छोटा राज्य था। राजा मल्लासरजा तथा रानी चेन्नाम्मा के प्रयासों से उस समय परिस्थिति कुछ नियन्त्रण में आई थी। परिस्थिति के परिवर्तन से कित्तूर राज्य क्रमश: समृद्धशाली तथा सम्पन्न होता गया। इसलिये पूने के पेशवा कित्तूर की समृद्धि से ईर्ष्या करने लगे। कित्तूर राज्य को क्षतिग्रस्त करने के लिये धूर्त पेशवा ने एक बार राजा मल्लासरजा को एकान्त में बुलाकर बन्दी बना लिया। राजा तीन वर्षों तक पेशवा के अधीन कारागार में बन्दी बने रहे। कित्तूर का शासन रानी चेन्नाम्मा सम्हालने लगी। अन्तत: १८१६ ई. में राजा मल्लासरजा की कारागार में ही मृत्यु हो गई।

नि:सन्तान चेन्नाम्मा ने राजा मल्लासरजा की मृत्यु के पश्चात् राजा की प्रथम पत्नी के पुत्र शिवलिंगप्पा रूद्रासरजा को दत्तक पुत्र के रूप में सिंहासन का उत्तराधिकारी बनाकर उसे सिंहासन सौंपा, किन्तु ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी ने डॉक्ट्रिन ऑफ लेप्स (Doctrine of Lapse) नामक नियम के अनुसार उसे उत्तराधिकारी मानने से मना कर दिया। यह नियम ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा निर्मित विलय-नीति का समर्थक था।

दूसरी ओर राज्य शासन का उत्तरदायित्व प्राप्त करने के पश्चात् भी शिवलिंगप्पा को राजनीति में कोई रुचि नहीं थी। वह कला और साहित्य का प्रेमी था। अत: वह राज्य-कार्य की उपेक्षा करने लगा, जिससे अंग्रेजों को और अधिक प्रोत्साहन मिल गया। इसलिये रानी चेन्नाम्मा को पुन: राज्य के शासन का भार स्वयं के हाथ में लेना पड़ा।

इधर ब्रिटिश सरकार अफसर ठाकरे (Thackray) धारवाड़ पर अपना पंजा पसारने लगा। धारवाड़ के आयुक्त चैपलीन (Chaplin) तथा ठाकरे दोनों ने मिलकर कित्तूर राज्य को ब्रिटिश सरकार के नियन्त्रण को स्वीकार करने के लिए अधिसूचित किया। इसी बीच ये धूर्त अंग्रेज अफसर कित्तूर के राजपरिवार के कुछ स्वार्थी सदस्यों को प्रताड़ना देकर अपनी ओर करने का प्रयत्न भी करने लगे। आधा राज्य देने का वादा करके राजपरिवार के कुछ बेईमान उच्चाकांक्षी कर्मचारियों को अपने साथ मिलाने में वे सफल भी हुए।

जब अंग्रेजों ने दत्तक पुत्र को उत्तराधिकारी मानने से अस्वीकार किया, तो रानी चेन्नाम्मा ने इसे अपनी आन्तरिक समस्या बताकर अंग्रेजों को इससे दूर रहने की चेतावनी दी। ब्रिटिश सरकार की नीयत को समझते हुए रानी ने प्रत्यक्ष रूप से प्रजा को एकत्र किया तथा स्पष्ट रूप से उन्हें यह चेतावनी दी कि अँग्रेज कित्तूर राज्य पर हमला करना चाहते हैं तथा इसे अपने अधिकार में लेना चाहते हैं। रानी चेन्नाम्मा ने प्रजा से कहा कि जब तक उनकी रानी जीवित है, तब तक वह सब प्रकार से कित्तूर की रक्षा करेंगी। अँग्रेजों की

पराधीनता से श्रेष्ठ है मृत्यु। रानी ने सचेत किया कि राज्य की रक्षा के लिए सशस्त्र युद्ध अवश्यम्भावी है। कित्तूरवासी अँग्रेजों की कूटनीति से भलीभाँति सुपरिचित तो थे ही। अत: उनलोगों ने रानी को पूर्ण सर्मथन करने का वचन दिया। समस्त प्रजा एक जुट होकर रानी का सहयोग करने के लिए तत्पर हो गयी।

युद्ध की योजनाएँ बनने लगीं। रानी चेन्नाम्मा रणनीति में कुशल तथा अत्यन्त साहसी थीं। वे सर्वप्रथम महिला शासक थीं, जिन्होंने भारतीय राज्यों पर अंग्रेजों के अनावश्यक हस्तक्षेप का स्पष्ट विरोध किया। अंग्रेजों ने रानी के दत्तक पुत्र शिवलिंगप्पा को राज से निर्वासित करने का आदेश दिया, परन्तु रानी ने उनके आदेश की पूर्णतया उपेक्षा कर अंग्रेजों को यह बता दिया कि वे अंग्रेजों की ऊँगलियों के इशारे पर चलनेवाली शासिका नहीं हैं। रानी ने कित्तूर के पक्ष में दलील देने के लिए बम्बे प्रेसिडेन्सी के लेफ्टीनेन्ट गवर्नर लार्ड एलपिन्स को पत्र भेजा, पर उनके दलील को ठुकरा दिया गया और अन्ततः ब्रिटिश और रानी के बीच युद्ध छिड़ गया।

२३ सितम्बर, १८२४ का वह दिन कर्नाटक के इतिहास का महत्त्वपूर्ण दिन रहा। अंग्रेजों ने कित्तूर किले को घेरकर रानी को आत्मसर्मपण करने के लिये कहा। राजनीति एवं रणनीति में अनुभवी चेन्नाम्मा को अंग्रेजों के आक्रमण का भान तो पूर्व से ही था और वे इसके लिए तत्पर भी थीं। उन्होंने किले के बाहर तथा अन्दर दोनों ओर छद्म वेष में सेना को नियुक्त किया था, जो इस आक्रमण के लिये तत्पर थे। किले के द्वार को अकस्मात् खोलकर सेनापति सिदप्पा और रानी की २००० सेना अंग्रेजों पर बिजली की भाँति टूट पड़ी। ब्रिटिश इस अकस्मात् आक्रमण के लिए प्रस्तुत न थे। देशभक्तों के भंयकर वार से अंग्रेजों की सेना त्रस्त हो गई और पीछे हटकर आत्मरक्षा में लग गई। रानी स्वयं किले के अन्दर से बन्दूकों और तोपों से अंग्रेजों को निशाना बनाने में सैनिकों को निर्देश देती रहीं। इस प्रकार रानी की बुद्धिमत्ता से अँग्रेज पराजित हो गये।

२३ सितम्बर, १८२४ के दिन अँग्रेजों को प्रथम युद्ध में रानी से पराजित होना पड़ा। इस युद्ध में ब्रिटिश सेना की भारी क्षति हुई। कलेक्टर और ऐजेन्ट सेंट जॉन ठाकरे इस युद्ध में मारे गये तथा दो अंग्रेज अधिकारी बंधक बना लिये गये।

परवर्ती काल में अँग्रेजों ने रानी को मिथ्या शपथ से आश्वस्त किया कि युद्ध समाप्त कर दिया जायेगा, जिससे भ्रमित होकर रानी चेन्नाम्मा ने बन्धकों को स्वतन्त्र कर दिया। किन्तु धूर्त मिथ्याचारी अंग्रेजों ने १२ नवम्बर, १८२४ को पुन: कित्तूर पर आक्रमण कर दिया।

रानी के पास ७००० सैनिक , २००० घुड़सवार सेना १००० ऊँट तथा ५० हाथी थे। उनका ८००० कुशल सैनिकों का एक विशेष दल था, जिसे 'प्रमाणित शेर' के नाम से विभूषित किया जाता था। उनके पास शस्त्रों में ११ तोप और १४ छोटी बन्दूकें थीं। अँगेजी सेना रानी के सैन्य बल तथा शस्त्र बल की अपेक्षा कई गुना अधिक सैन्य व शस्त्रों से सुसज्जित थी। अँगेज आक्रमणकारियों के पास २०,००० पुरुष सैनिक, ४०० तोप, जिसमें मुख्य रूप से मद्रास नेटिव फोर्स आर्टलरी की तीसरी टुकड़ी सम्मिलित थी।

१२ नवम्बर के बाद ३० नवम्बर को अँगेजी सेना ने पहले से भी अधिक २५,००० सैनिकों के साथ कित्तूर के किले पर आक्रमण कर दिया और रानी को पुन: आत्मसमर्पण करने को कहा। रानी चेन्नाम्मा ने साहस व धैर्य बनाए रखा। अपने दोनों विश्वस्त सेनापतियों के साथ वे अंग्रेजों से युद्ध करती रहीं। सेनापित सांगोली रायन्ना और गुरु सिदप्पा रानी की रक्षा करने में यथासम्भव प्रयास करते रहे।

परन्तु अँग्रेजों की इतनी बड़ी सैन्यशक्ति तथा तोपों के समक्ष रानी के सिपाही कम पड़ गए। साथ ही रानी के कुछ लालची अविश्वासी कर्मचारियों ने अँग्रेज अधिकारियों से मिलकर रानी से धोखा किया। रानी चेन्नाम्मा के तोपों और बन्दूकों की बारूद में नकली बारूद तथा गाय के गोबर आदि मिला दिया गया था, जिससे युद्ध के समय रानी के शस्त्र व्यर्थ हो गए। २५,००० सैनिकों से लड़ना सामान्य बात तो थी नहीं, पर रानी ने हार नहीं मानी। वे मन से दृढ़ रहीं तथा अपने सैनिकों को निर्देश देती रहीं। उसी समय हुराकादली तथा मल्लाप्पा नामक दो मुख्य सेनापति रानी से छल करते हुए युद्ध से विरत हो गए। इससे रानी कमजोर पड़ गईं। अंग्रेजों ने रानी चेन्नमा को घेर लिया और उन्हें बन्दी बना लिया।

बन्दी बनाने के बाद रानी को बैलहोंगल के कारागार में रखा गया। पाँच वर्षों तक रानी चेन्नाम्मा बन्दी अवस्था में रहीं। अन्ततः २१ फरवरी, १८२९ को वीर रानी चेन्नाम्मा

कारागार में ही वीरगति को प्राप्त हो गईं। अंग्रजों ने रानी की मृत शरीर को वैलहोंगल में ही दफना दिया। वर्तमान में सरकार द्वारा बैलहोंगल में निर्मित पार्क में रानी चेन्नाम्मा की समाधि है।

रानी चेन्नाम्मा का देहावसान भले ही हो गया, परन्तु उनकी वीरता एवं शौर्य गाथा कर्नाटक के प्रत्येक घर और गलियों में गूँजने लगी और यहाँ के लोगों को स्वदेश प्रेम, आत्मसम्मान एवं आत्मत्याग के लिए सदा प्रेरित करती रही। जिस समय भारत के अन्य प्रान्तों में स्वतन्त्रता-संग्राम का विचार तक नहीं आया था, उस समय रानी चेन्नाम्मा ने अँग्रेजी शासन के विरुद्ध शस्त्र उठाया और युद्ध का नेतृत्व किया। केवल भारतीय नारियों के लिये ही नहीं, अपितु भारतीय पुरुषों के लिये भी चेन्नाम्मा आर्दश की प्रतिमूर्ति हैं और अन्याय से समझौता न करने की प्रेरणा देती रहती हैं।

अँग्रेजी उपनिवेशवाद को चुनौती देनेवाली चेन्नाम्मा एक सच्ची लोकनायिका थीं। चेन्नाम्मा की इस वीर-गाथा एवं उनके बलिदान की सत्य-कथा को अंग्रेजों द्वारा पूर्णत: दबा दिया गया था। अंग्रेज जानते थे कि राष्ट्र हेतु एक नारी के बलिदान का यह दृष्टान्त भारत के जनसाधारण के हृदय में निहित स्वाधीनता की अग्नि का विस्फोट कर देगी। अत: रानी चेन्नाम्मा का नाम तक इतिहास के पृष्ठों से मिटाने का प्रयास किया गया।

इतिहासकार प्रोफेसर कपिल कुमार एक साक्षात्कार में कहते हैं – ''भारत में इन सभी क्रान्तिकारियों के सम्बन्ध में सूचनाएँ छिपा दी गई थीं। १८५७ में वीर सावरकर ने अपनी पुस्तक में इसे स्वाधीनता हेतु किया गया प्रथम संघर्ष लिखा तथा इन्हें आदर्श माना। इस पुस्तक में उल्लेख के पश्चात् रानी चेन्नाम्मा लोक-दृष्टि में आईं तथा उनकी वीरता की चर्चा सर्वत्र होने लगी। किसी महिला के नेतृत्व में उपनिवेश विरोधी यह प्रथम विद्रोह था।''

रानी चेन्नाम्मा की अंग्रेजों पर प्रारम्भिक लड़ाई में विजय की स्मृति आज भी कित्तूरवासियों के हृदय में जोश एवं उल्लास उत्पन्न करती है। इसीलिये आज भी २२ से २४ अक्तूबर ४ दिन तक कित्तूर में विजय उत्सव के रूप में मनाया जाता है।

भारत के वर्तमान संसद भवन में एक निर्दिष्ट स्थल को 'प्रेरणा स्थल' नाम से भूषित किया गया है, जहाँ अतीत के बलिदानियों की मूर्त्तियों तथा उनकी स्मृतियों को संजोकर रखा गया है। रानी चेन्नाम्मा की मूर्त्ति भी इसी प्रेरणास्थल में स्थापित है। इस मूर्ति का अनावरण भारत के पूर्व राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा पाटिल द्वारा किया गया था। वीर बलिदानियों की ये मूर्त्तियाँ लोकतन्त्र के जन-प्रतिनिधियों को लोक-कल्याण हेतु आत्मत्याग एवं अन्याय से लड़ने की प्रेरणा देती हैं। ये स्मरण दिलाती हैं कि स्वतन्त्र भारत का तिरंगा इन बलिदानियों की रक्त रंजित भूमि पर लहराया गया था। रानी चेन्नाम्मा ने स्वराज्य की रक्षा के लिए जीवन जिया एवं स्वराज्य की रक्षा के लिए सहर्ष बलिदान दे दिया। किसी कवि द्वारा रचित कविता की ये पंक्तियाँ रानी चेन्नाम्मा के हृदय में बसे देशप्रेम की भावना को व्यक्त करने में अधिक उपयुक्त हैं –

यह देश मेरा, धरा मेरी, गगन मेरा,
उसके लिए बलिदान हो प्रत्येक कण मेरा।
इस भूमि पर मस्तक उठाये चल रहा हूँ, मैं।
शस्य-श्यामल भूमि को शत-शत नमन मेरा।।

OOO

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. Brave Women of India – Krishna Kumar Aggarwal. 2. Untold Heroines – Women's Contributions to Karnataka's struggle for Independence by Dr. Guruprakash Hugar (IJCRT) **3.** Freedom struggle in Karnataka - Role of Women Freedom Fighters. Author - Mallikarjun I. Minch

अहंकार नाश कैसे हो?

अहंकार को कैसे दूर करना चाहिए, जानते हो? धान कूटते समय बीच-बीच में रुककर देखना पड़ता है; यदि कूटना ठीक नहीं हुआ हो तो फिर कूटना पड़ता है। निकती पर कोई वस्तु तौलते समय, जब तक काँटा ठीक न हो, तब तक ठहरकर देखना पड़ता है। मैं समय-समय पर स्वयं को गालियाँ देकर देखता था कि मुझमें अहंकार उठता है या नहीं और विचार करता था, 'भला यह शरीर क्या है? केवल हाड़-मांस का ढाँचा ! इसके अन्दर क्या है? खून, पीब आदि गन्दी चीजें ! जिस शरीर के भीतर सदा मल भरा हुआ है, उस पर भला इतना अहंकार क्यों किया जाए?'

– श्रीरामकृष्ण परमहंस देव

श्रीरामकृष्ण-गीता (४३)

(नवम् अध्याय ९/३)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

मन एव मनुष्याणां सर्षपपोटुली यथा।
सकृत् सा कीर्यमाना चेत् समाहारं सुदुष्करम्।।१७।

– मानव-मन सरसों की पोटली जैसा होता है। एक बार बिखर जाने के बाद उसे समेटना, एकत्र करना कठिन हो जाता है।

मनस्तद्वन्मनुष्याणां सकृत् संसारभूमिषु।
समन्तात् कीर्यमानं चेत् समाधानं सुदुष्करम्।।१८।।

– वैसे ही मनुष्य का मन भी एक बार संसार में बिखर जाने के बाद उसे स्थिर करना बड़ा कठिन होता है।

मन एव हि बालानां यत्तु न बहुधागतम्।
तत् स्वल्पायासमात्रेण स्थिरीभवितुमर्हति।।१९।।

– जैसे जिन बालकों का मन चारों ओर बिखरा नहीं है, वह अल्प प्रयास में ही स्थिर हो सकता है।

दुःसाध्यं तु मनः कृत्स्नं वृद्धानां विषये रतम्।
संसारात्तत् समाहृत्य समानयनमीश्वरे।।२०।।

– किन्तु वृद्धों का सोलह आना मन जो संसार में बिखर गया है, उसे संसार से हटाकर ईश्वर में स्थिर करना बहुत कठिन है।

यद्वत् सूर्योदयात् पूर्वं दधि चेन्मथितं भवेत्।
उत्तमं नवनीतं स्यान्नोत्कृष्टं तदनन्तरम्।।२१।।

– जिस प्रकार सूर्योदय के पहले दधि-मन्थन करने पर उत्तम माखन निकलता है, उसके बाद अच्छा माखन नहीं निकलता है।

तथैव बाल्यकाले च य ईश्वरानुरागिनः।
लभेरन्नीश्वरं ते हि साधने भजने रताः।।२२।।

– उसी प्रकार बचपन में जो लोग ईश्वरानुरागी होते हैं और साधन-भजन करते हैं, उन्हें ईश्वर-प्राप्ति होती है।

शुष्कदीप-शलाकावद् वासनारहितं मनः।
सकृद्वै घर्षणेनासौ सद्यः प्रज्ज्वलिता भवेत्।।२३।।

– वासनाहीन मन कैसा है जानते हो? जैसे सूखी दियासलाई होती है। एक बार घीसने से ही भक से जल जाती है।

असौ चेज्जलसिक्ता स्याद् घर्षणैश्च पुनः पुनः।
प्रज्वलिता भवेन्नैव भग्नापि शतखण्डशः।।२४।।

– यदि भीगी हुई हो, तो घिसते-घिसते तिल्ली/शलाका टूटकर खण्ड-खण्ड होने पर भी नहीं जलेगी।

निर्मलसत्यनिष्ठानां नृणामवक्रचेतसाम्।
सकृदेवोपदेशाद्ध्यनुरागो भवतीश्वरे।।२५।।
तथैवार्द्रशलाकावत् विषयासक्तचेतसाम्।।
प्रज्ञा न जायते पुंसामुपदेशैः शतैरपि।।२६।

।। ओमिति श्रीरामकृष्णगीतासु साधनाधिकारी नाम नवमोऽध्यायः।।

– वैसे सरल, सत्यनिष्ठ, निर्मलचित्त को एक बार उपदेश देने से ही ईश्वर में प्रेम का उदय होता है। भीगी हुई दियासलाई जैसे विषयासक्तचित्त व्यक्ति को सैकड़ों बार उपदेश देने पर भी कोई ज्ञान नहीं होता।।२५-२६।।

।। ॐ श्रीरामकृष्णगीता का 'साधना का अधिकारी' नामक नवम् अध्याय समाप्त।।

(क्रमशः)

कविता

नन्दलला चित मोह रहा है

– श्रीधर द्विवेदी, वाराणसी

श्यामल-अंग अनंग लजावत, मोर पखा सिर सोह रहा है।
वेणु बजावत धेनु चरावत कानन में कुछ टोह रहा है ।।
पीत पटा घुँघरारि जटा त्रिभंग छटा अति सोह रहा है।
बोल रही वृषभानु लली सखी नन्दलला चित मोह रहा है ।।

स्वतन्त्रता दिवस विशेष

राष्ट्रबोध ही एक लक्ष्य हो

गिरीश पंकज, रायपुर

राष्ट्रबोध, राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रीयता, देशभक्ति, राष्ट्रीय अस्मिता, ये ऐसे महान शब्द हैं, जिनको आत्मसात् करके कोई भी राष्ट्र शिखर पर खड़ा रह सकता है। परतन्त्रता से स्वतन्त्रता की लम्बी लड़ाई हमने इन्हीं शब्दों को आत्मसात् करके लड़ी थी और स्वतन्त्रता के सूर्य का वरण किया। पर आज हमारी स्थिति क्या है? धीरे-धीरे 'राष्ट्रबोध' कम हुआ है और कम होते जा रहा है, यह गम्भीर चिन्ता की बात है। महान कवि गया प्रसाद शुक्ल स्नेही की पंक्तियाँ हैं –

जो भरा नहीं भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है, पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।।

जब देश से प्यार न होगा, अनुराग न होगा, स्नेह न होगा, तब हम राष्ट्रविरोधी बातें करके अपने को प्रगतिशील सिद्ध करने की कोशिश करेंगे। जब तक हम अपने देश को अपना नहीं समझेंगे, इस मिट्टी से अपना गहरा नाता नहीं बनाएँगे, तब तक देश-प्रेम विकसित नहीं होगा। राष्ट्र के प्रति हमारा बोध तभी विकसित होगा, जब हम इस धरती को अपनी माँ समझेंगे। राष्ट्र से हमारा सम्बन्ध भौतिक न होकर भावनात्मक होना चाहिए। पर इस निर्मम बाजारू समय में हमने राष्ट्र, राष्ट्रबोध को, राष्ट्रवाद को लगभग समाप्त कर दिया है। शेष कुछ लोग राष्ट्र की चिन्ता करते दिखते हैं। अगर आप राष्ट्रवाद या राष्ट्रबोध की बात कर रहे हैं, तो हो सकता है आप को किसी दल या संकुचित विचारधारा का समझ लिया जाए।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था 'जननी जन्मभूश्चि स्वर्गादपि गरीयसी', स्वर्ग से सुन्दर वह धरती है, जिस पर हमने जन्म लिया है, इसलिए वह हमारी माँ भी है। हम लोगों ने तो जीवनदायिनी गंगा को भी माँ कहा, गाय को भी गो माता के पद पर प्रतिष्ठित किया। क्योंकि उसका दूध पीकर हम बड़े होते हैं और आजीवन ही उसका दूध पीते रहते हैं। हमने प्रकृति से सम्बन्ध स्थापित किया, नदी-पर्वतों को पूजा। इसीलिए हम पूरे विश्व में अलग राष्ट्र हैं, इसीलिए हम विश्वगुरु कहलाते रहे, क्योंकि हमारी सोच सबसे अलग रही। पर हम अब कुछ अधिक आधुनिक हो गए हैं और सच में पथभ्रष्ट हो गये हैं। स्वामी विवेकानन्द ने मद्रास में जो अपना अन्तिम व्याख्यान दिया था, वह भारत के भविष्य को लेकर ही था। वह बहुत लम्बा व्याख्यान है। उसका एक अंश यहाँ दे रहा हूँ जिसमें वे कहते हैं, 'यह जननी मातृभूमि ही मानो तुम्हारी आराध्य देवी बन जाए। इस आधी शताब्दी के लिये अपने मष्तिष्क से अन्यान्य देवी-देवताओं को हटाने में भी कुछ हानि नहीं है। अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ, देश को जगाओ, जाति को जगाओ, इसी में उस परब्रह्म परमात्मा को देखो। सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर हैं और सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि अन्यान्य देवी हैं। मैंने भी कभी लिखा था, हो सकता है मेरे अचेतन मन में स्वामी विवेकानन्द का चिन्तन ही समाया हुआ हो –

राष्ट्र की आराधना ही लक्ष्य हो इंसान का।
बाद में पूजन करेंगे हम किसी भगवान का।
देश की निन्दा करे जो, है अधम पापी वही,
अन्त होना चाहिए अब, ऐसे हर नादान का।।

क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल का नाम किसी अभागे ने ही न सुना होगा। बलिदान कौन भूल सकता है? उनके मन में अपनी मातृभूमि के लिए अद्भुत प्रेम था। उनकी एक अमर रचना यहाँ दे रहा हूँ। देखें –

ऐ मातृभूमि तेरी जय हो, सदा विजय हो,
प्रत्येक भक्त तेरा, सुख-शान्ति-कान्तिमय हो।
अज्ञान की निशा में, दुख से भरी दिशा में,
संसार के हृदय में तेरी प्रभा उदय हो।।
तेरा प्रकोप सारे जग का महाप्रलय हो,
तेरी प्रसन्नता ही आनन्द का विषय हो।
वह भक्ति दे कि 'बिस्मिल' सुख में तुझे न भूले,
वह शक्ति दे कि दुख में कायर न यह हृदय हो।।

मातृभूमि का जय-घोष लगानेवाली पीढ़ी अब नहीं दिखती। हाँ, मातृभूमि के टुकड़े-टुकड़े करनेवाले कुछ लोग नायक बन रहे हैं। यदि यही स्थिति रही, तो वह दिन दूर नहीं, जब देश संकटग्रस्त हो जायेगा। घर में आग घर के चिरागों से ही लगती रही है। अब ऐसे मूर्ख चिराग बढ़ रहे हैं, जिन्हें तत्काल बुझाना पड़ेगा और ऐसे चिरागों को प्रोत्साहित करना होगा, जो राष्ट्र में व्याप्त हर तिमिरों को

दूर कर प्रकाश-गंगा प्रवाहित कर सकें।

मानसिक दिवालियापन – वास्तव में वह राष्ट्रीय चेतना ही मुखरित न हो सकी, जो होनी चाहिए। स्वतन्त्रता के ठीक बाद हमारी पाठ्य-पुस्तकों में देशभक्ति के पाठ सम्मिलित रहते थे। बच्चों को देशभक्ति के गीत पढ़ाए जाते थे। देश के लिए बलिदान होनेवाली सत्य कथाएँ पढ़ाई जाती थीं। हमारे समग्र अध्ययन का केन्द्र ही राष्ट्रभक्ति थी, पर जैसे-जैसे हम 'ग्लोबल' बनते या बनाए जाते गए, वैसे-वैसे हमारे पाठों से देश और देशभक्ति लुप्त होती चली गई। आज हम कीड़े-मकोड़ों को तो पढ़ते हैं, पर देशभक्तों से दूर हो गए हैं। ऐसे में बच्चों के मन में राष्ट्रबोध जगे तो जगे कैसे? जब बच्चा बचपन से ही राष्ट्र के बारे में सोचेगा, समझेगा, तभी तो उसके मन में राष्ट्रानुराग होगा। मानसिक दिवालियेपन का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है कि प्रगतिशील बनने की रौ में हम 'ग' से 'गधा' पढ़ाने लगे और ग से गणेश को विसर्जित कर दिया। अपनी अस्मिता को तिलांजलि देकर हमने अपनी पीढ़ी को जड़ से काट दिया। मस्तिष्क में साम्प्रदायिकता भर दी और इस सनातन राष्ट्र को सद्य: जन्मे राष्ट्र की श्रेणी में रख दिया। राष्ट्रकवि गुप्तजी को याद करते हुए कहना चाहता हूँ कि –

हम कौन थे, क्या हो गए और क्या होंगे अभी।
आओ विचारें आज मिल कर ये समस्याएँ सभी।।

परतन्त्र-काल में लोग देशभक्त होते थे। देश पर मर-मिटने को तत्पर रहते थे। हमारे शहीदों ने यही कहा था कि हम भले ही मर जाएँ, किन्तु हर बार इसी देश में हमारा जन्म हो। महान देशभक्त क्रान्तिकारी भगतसिंह के उस पत्र को हम याद करें, जिसमें वे प्रारम्भ करते हैं 'वन्देमातरम्' से और समापन करते हैं 'भारतमाता की जय' से। भारत माता की जय का संकल्प लिए बिना यह देश आगे नहीं बढ़ सकता। आज देश में जो उदारवादी हवा भर रही है, उसे देखकर भय होता है कि यदि यही गति रही, तो आनेवाले समय में भारत में राष्ट्रवादी शक्तियाँ समाप्त हो जायेंगी। आचार्य विनोबा भावे भी 'जय जगत' की बात करते थे, जगत की जय हो, पर उन्होंने कभी भी देश से विमुख होने की बात नहीं कही।

अलगाववादी शक्तियाँ बढ़ रही हैं – आज देश में ही अलगाववादी शक्तियाँ बढ़ रही हैं। पिछले दिनों दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में राष्ट्रविरोधी नारे गूँजे, वे नारे भारतीयों ने लगाए, पाकिस्तान से आए छात्रों ने नहीं लगाए। सोचिए, आजादी के सत्तर साल तक पहुँचते-पहुँचते हमारी युवा-पीढ़ी किस अराजक मानसिकता का शिकार हो गयी है। राष्ट्रबोध नहीं होने का ही परिणाम है कि नई पीढ़ी को देश की परम्परा और संस्कृति से कोई लगाव नहीं रहा, वह नग्न होकर विचरण करने को अधिकार समझती है, वर्ज्य आचरण करना चाहती है। लोग तिरंगे का अपमान करते हैं। राष्ट्रगान सुनकर मोबाइल में या आपस में बात करते हैं, हिलते-डुलते हैं, सावधान खड़े नहीं रहते। देश छोड़कर विदेश चले जाने की प्रवृत्ति भी बढ़ी है। ऐसे लोगों के लिये राष्ट्र का कोई विशेष महत्त्व नहीं रहा। राष्ट्र उनके लिये धर्मशाला या होटल है। जबकि राष्ट्र हमारी आत्मा है। इसके बिना हम जीवित नहीं रह सकते। पर अब किसको यह समझाया जाए? आज देश की बात करना पिछड़ेपन की निशानी है। इसका बड़ा कारण हमारी शिक्षा प्रणाली है, जिसमें धीरे-धीरे राष्ट्र विलुप्त होता गया और कैरियर प्रमुख हो गया। इस कैरियर के लिए देश को छोड़ दो, बूढ़े माता-पिता को छोड़ दो, निर्मम हो जाओ, सब चलेगा। पैकेज ही प्रमुख है – 'पैकेज सत्यं जगन्मिथ्या', ये नया श्लोक पढ़ा जा रहा है। ऐसे भयावह समय में जीते हुए अगर पिज्जा-बर्गर, चाऊमीन और फटी चिथड़ी जींस पहनने के फैशन को आत्मसात् कर रहे, तो सोचिये हम कितने विवेकवान हैं?

राष्ट्र आत्मा का हिस्सा रहे

किसी भी राष्ट्र की शक्ति उसके देशभक्त नागरिक ही होते हैं। यदि देशभक्तों ने बलिदान न दिया होता, तो क्या भारत स्वतन्त्र हो सकता था? वह राष्ट्रबोध ही था, जिसने चेतना जगाई। तत्कालीन युवा पीढ़ी ने अपने भविष्य को दांव पर लगा कर देश को स्वतन्त्र कराने का संकल्प किया। अनेक बलिदान भी हुए, पर आज कहाँ गया वह राष्ट्रबोध? तुच्छ स्वार्थपरता ने हमें राष्ट्रविरोधी बना दिया है। लोग यहाँ पढ़ते-लिखते हैं और एक दिन विदेश में कहीं जाकर बस जाते हैं। वे वहाँ दोयम दर्जे के ही नागरिक बने रहते हैं, उपेक्षित रहते हैं, उस देश की मुख्यधारा में शामिल नहीं हो पाते, अपने सीमित क्षेत्र में जीने के लिए अभिशप्त से रहते हैं, पर रहेंगे वहीं, क्योंकि वहाँ पैसा है, अच्छा पर्यावरण है। माता-पिता से दूर, अपने स्वजनों से दूर पड़े रहेंगे, पर राष्ट्र के बारे में नहीं सोचेंगे। ऐसे अयोग्य राष्ट्रविरोधी युवक

शेष भाग पृष्ठ ३८१ पर

स्वतन्त्रता दिवस विशेष

परतन्त्रता काल में राष्ट्रमन्त्र के उद्‌गाता

डॉ. राजकुमार उपाध्याय 'मणि' प्रोफेसर, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

भारत के राष्ट्रवादी, धर्म-समाज के संरक्षक, सन्तों में अग्रगण्य, सन्त-त्रिमूर्ति – गुरु गोरखनाथ, स्वामी रामानन्दाचार्य और समर्थ गुरु रामदास का नाम लिया जा सकता है। इन तीनों महात्माओं ने अपने प्रभाव और स्वभाव से भारतीय समाज और संस्कृति की अथक रक्षा की है। अपनी आध्यात्मिक शक्तियों से समाज को समर्थ बनानेवाले समर्थगुरु रामदास का जन्म महाराष्ट्र में गोदावरी नदी के तट पर १६०८ ई. में चैत्र शुक्ल नवमी तिथि को हुआ था। अतएव उनके माता-पिता राणुबाई एवं सूर्याजी पंत ने उन्हें रामदास कहा, किन्तु उनके बचपन का नाम नारायण रखा था।

परम्परागत ढंग से पाँच वर्ष की अवस्था में उनका यज्ञोपवीत संस्कार करके विद्यारम्भ कराया गया। बाल-ब्रह्मचारी नारायण की नित्य द्वि-सहस्त्र सूर्य नमस्कार करना दिनचर्या हो गई थी। बाल-जीवन में चपलता के प्राबल्य के कारण नग-वृक्षारोहण की प्रवृत्ति बन चुकी थी। आंजनेय एवं श्रीराम की इष्ट-सिद्धि हो जाने से अब वे समर्थ गुरु रामदास बन गए थे। उनमें वैराग्य की प्रवृत्तियों को देखते हुए माता-पिता द्वारा नारायण के विवाह की तैयारी बारह वर्ष की अवस्था में होने लगी थी। विवाह-मंडप में शुभ-लग्न शाखोच्चार के समय पुरोहित जी द्वारा 'शुभ-लग्न सावधान' तीन बार कहने पर बालक नारायण विवाह-मंडप से नौ-दो-ग्यारह हो गए और गोदावरी नदी को पार करके नासिक के पंचवटी में बारह वर्षों तक घोर-साधना की। उन्होंने गोदावरी-नंदिनी नामक नदी के संगम के निकट गुफा में निवास बनाया। कालान्तर में उन्होंने छह माह पर्यन्त कटि तक जल में स्थिर होकर कृच्छ-तप किया और 'श्रीराम जयराम जय जय राम' त्रयोदशाक्षरी मन्त्र का सतत जप किया। अन्ततः उन्हें भगवान श्रीराम का दर्शन मिला।

नासिक के पास गुफा में तीन वर्षों तक वेदान्त, उपनिषद, रामायण, महाभारत का अध्ययन करके उन्होंने भारतीय जीवन-मूल्यों की रक्षा का संकल्प लिया। राष्ट्रार्थ, मानवहितार्थ समर्थ गुरु रामदास ने संत-शक्ति का 'पंचायतन-मंडल' बनाया। समर्थ गुरु ने संत तपस्या का उद्देश्य राष्ट्रोद्धार बताया और देश-देशान्तर के तीर्थों में जाकर उन्होंने आक्रान्ताओं से भारत की मुक्ति के लिए श्रीराम की भक्ति का सन्देशोपदेश दिया। गोदावरी के नासिक में पंचवटी के साधनोपरान्त द्वारिका, काशी, अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, श्रीनगर, बदरिकाश्रम, केदारनाथ होते हुए उन्होंने मदुरै, रामेश्वरम् की तीर्थ-यात्रा की और भारत-शक्ति-बोध एवं राष्ट्रबोध का उपदेश देते हुए राष्ट्र-रक्षा का आह्वान किया।

परतन्त्रता काल में समर्थगुरु रामदास ने राष्ट्र-मन्त्र के उद्‌गाता के रूप में राष्ट्र-रक्षा के लिए अपनी तपस्या की शक्ति एवं रामराज्य के नीति की भक्ति से सम्पन्न शिवाजी को छत्रपति बनाया। समर्थगुरु रामदास के प्रति छत्रपति शिवाजी अनन्य भक्ति-भावना से ओत-प्रोत थे। शिवाजी ने अपना जीवन-सर्वस्व अपने गुरु रामदास को समर्पित कर दिया था। पूरे देश में समर्थ गुरु की आध्यात्मिक-शक्ति एवं शिवाजी की क्षात्र-शक्ति से मुगल शासक काँपते थे। गुरु की तपस्या तब सफल सिद्ध हो गई, जब छत्रपति शिवाजी ने हिन्दूपद-पादशाही को सुशोभित किया। निराशा की कालिमा में डुबा हुआ सम्पूर्ण राष्ट्र गौरव की लालिमा से उद्भासित हो उठा। भारतीय समाज में राष्ट्रोत्थान की दिशा से सत्त्व का बोध होने लगा। छत्रपति शिवाजी ने अपनी युद्ध-नीति के पराक्रम से आतताइयों के राज्य-विजय के अभियान का रथ अवरुद्ध कर दिया। अब राष्ट्र को वैरागी समर्थगुरु जैसे सन्त का सान्निध्य मिल गया था और शिवाजी जैसे सिरस्त्राण राष्ट्रनायक का उदय हो गया था। अब हिन्दू सनातन धर्म-संस्कृति पर अत्याचार की तलवार रूक गई। अब हिन्दुस्तान में सन्त-भगवन्त का जयगान होने लगा और देश के कोने-कोने में मठ-मन्दिरों का पुनर्निर्माण होने लगा। श्रीराम-हनुमान के मन्दिरों की पुनःर्स्थापना के साथ-साथ हिन्दू वीर-युवा की निर्मात्री-शक्ति मल्लशाला-व्यायामशाला जैसे अखाड़ों का सृजन आरम्भ हो गया था। इसके साथ ये सभी स्थल शिवाजी के सिपाहियों की गुप्त-चौकियों एवं हिन्दुत्व के विचार-केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित होने लगे थे। भारतवर्ष के तीर्थ-क्षेत्र, मठ-मन्दिरों की रक्षा होने लगी थी। देश में हिन्दुत्व की चेतना एवं जन-जन में राष्ट्रीय-भावबोध का जागरण होने लगा था। गुरु रामदास अपनी तपस्या

से हिन्दू-समाज एवं हिन्दू-राजाओं को समर्थ बनाने लगे। इसलिए सम्पूर्ण भारतीय समाज और अनेक राजाओं के लिये गुरु रामदास समर्थ सिद्ध हुए।

समाज की अशुभ भाग्य-लिपि को सौभाग्य लिपि में परिवर्तन की क्षमता सिद्ध सन्त समर्थ गुरु रामदास में थी। ऐसे राष्ट्रसन्त समर्थगुरु रामदास का निर्वाण १६८२ ई. में सतारा के निकट सज्जनगढ़ में हुआ था। उनकी पावन स्मृति में आज भी यहाँ समाधि-स्थल बना हुआ है। ऐसे राष्ट्रऋषि अपने जीवन में लोक-कल्याण का कार्य करने हेतु प्रादुर्भूत होते हैं। समर्थगुरु रामदास की पंच रचनाएँ उनकी साहित्यिक प्रतिभा को द्योतित करती हैं, जिसमें 'दासबोध' सर्वाधिक प्रसिद्ध है।

समर्थगुरु ने अपनी साधना की सिद्धि से अनेक गरीबों को धनवान, मृतक को संजीवनी, बन्ध्या को सपूतवती का आशीर्वचन देकर लोक-कल्याण का भी मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने भगवान की भक्ति, राष्ट्र रक्षा की संकल्प-शक्ति, धर्म के प्रति अनुरक्ति व मातृभूमि के प्रति आसक्ति का नव पुरुषार्थ जागृत किया। समाज में अस्पृश्यता के विरुद्ध शंखनाद करते हुए समर्थगुरु रामदास ने श्रीराम नवमी महोत्सव के अवसर पर चाफल के भोरवाड़ी निवासी अस्पृश्य दम्पतियों को मांड नदी में स्नान करने के बाद उनकी पाद-पूजा, वस्त्र आदि से अभिवन्दना करते हुए भोजन एवं दक्षिणा प्रदान की थी। उन्होंने समाज के सभी वर्गों को 'श्रीराम जयराम जय जय राम' त्रयोदशाक्षरी मन्त्र की दीक्षा लेने एवं दक्षिणा पाने का समान अधिकार दिलाया। उन्होंने ग्यारह सौ शिष्यों को अनेक मठों के महन्त का स्थान प्रदान किया। जिसमें एक चौथाई लगभग तीन सौ केवल महिलाओं को प्रतिनिधित्व प्रदान किया था। उन्होंने समाज में धार्मिक जागरण एवं प्रबोधन के लिए श्रीरामनवमी का महोत्सव आरम्भ किया। उनसे प्रेरित होकर आधुनिक समय में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने समाज-जागृति एवं एकत्व-जागरण हेतु महाराष्ट्र में गणेशोत्सव की प्रथा प्रारम्भ की। समर्थ गुरु ने ही स्वराज एवं धर्म का मूल-मन्त्र अपने अभंगों के माध्यम से दिया था – 'धर्मकारिता मरावे, मरोनि अवध्यांसी मरावे।' ○○○

मन को वश में करने का उपाय – स्वामी शिवानन्द

सेवक – महाराज, मेरा तो जप-ध्यान में इतना मन लगता नहीं। जप करने के लिए बैठते ही, कहाँ की सब व्यर्थ चिन्ताएँ आकर मन को चंचल कर देती हैं। आपकी सेवा के साथ-साथ तथा अन्य काम-काज के भीतर तो भगवान का स्मरण-मनन होता है, मन शान्त भाव धारण करता है और उसमें आनन्द भी पाता हूँ, किन्तु ज्योंही जप-ध्यान करने बैठता हूँ, त्योंही मन मानो विद्रोही हो उठता है। इस प्रकार मन के साथ बारम्बार लड़ाई करके, एक महा अशान्ति का अनुभव करते हुए अन्त में थककर उठ जाना पड़ता है। ऐसा पहले नहीं होता था। अभी कुछ दिनों से विशेषकर जब से आपकी सेवा करना प्रारम्भ किया है, तभी से मन की ऐसी अवस्था हो गयी है।

सेवक के मन की अशान्त अवस्था की बात सुनकर स्वामी शिवानन्द (महापुरुष महाराज) कुछ देर तक चुप रहे; बाद में धीर भाव से बोले, ''हाँ, किसी-किसी मन का इस प्रकार का विद्रोही भाव रहता है। मन को भी वश में लाने का उपाय है। उस प्रकार के अशान्त मन को भी क्रमश: शान्त करके ध्येय-वस्तु पर एकाग्र किया जा सकता है। जप-ध्यान करने के लिए जब आसन पर बैठो, उसी समय जप या ध्यान प्रारम्भ मत करना। पहले धीर भाव से बैठकर ठाकुर के समीप कातर हो प्रार्थना करना। ठाकुर हैं जीवन्त समाधिस्वरूप। उनके पास आन्तरिक प्रार्थना करके उनका चिन्तन करने से ही मन स्थिर हो जाएगा। कहना, 'हे प्रभु, मेरे मन को स्थिर कर दो, मेरे मन को शान्त कर दो।' इस प्रकार कुछ देर प्रार्थना करके ठाकुर की समाधि की बात का चिन्तन करना। उनका जो चित्र देखते हो, वह चित्र बड़ी उच्च समाधि-अवस्था का है। साधारण मनुष्य इस चित्र का कोई तात्पर्य नहीं समझ सकता। बाद में चुपचाप बैठकर मन की ओर देखते रहना कि वह कहाँ जाता है। तुम तो मन नहीं हो। मन तुम्हारा है, तुम मन के अधीन नहीं हो, तुम स्वतन्त्र हो, आत्मस्वरूप हो। धीर भाव से द्रष्टा के समान बैठकर मन की गतिविधियों को लक्ष्य करते जाना। बहुत समय तक इधर-उधर भागने के बाद मन आप ही थक जाएगा। तब मन को पकड़कर ठाकुर के ध्यान में लगा देना। जब-जब मन भागे, तब-तब उसे पकड़कर ले आना। इस प्रकार करते-करते देखोगे कि मन धीरे-धीरे शान्त हो जाएगा। तब बड़े प्रेम के साथ भगवान का जप करना, उनका ध्यान करना। कुछ दिनों तक ठीक जैसा बताया है, वैसा ही करते जाओ। देखोगे कि मन तुम्हारे वश में आ गया है। परन्तु बड़ी निष्ठा के साथ नित्य-नियमित भाव से यह करना होगा।

गीतातत्त्व-चिन्तन

चौदहवाँ अध्याय (१४/१)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १४वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

त्रिगुणों के माध्यम से परमात्म तत्त्व का कथन

चौदहवें अध्याय में गुणों का चिन्तन करते हुए, एक गुण से दूसरे गुण को पार करते हुए अन्त में जो सत्त्वगुण बचा रहता है, उसको भी पार करके, त्रिगुण से परे उस आत्मतत्त्व का साक्षात्कार कर लेना दर्शाया गया है। यह इस अध्याय का विशिष्ट अर्थ है। इसीलिए यहाँ पर जो चिन्तन किया गया है, वह गुणों की दृष्टि से किया गया है। तेरहवें अध्याय का चिन्तन क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ की दृष्टि से था। यह शरीर एक खेत के समान है। यह क्षेत्र है। इसमें प्रकृति का जितना भी जड़ पक्ष है, इन सबको क्षेत्र कहा गया। इस क्षेत्र में ये पाँच तत्त्व हैं – आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। और फिर मन के तीन स्पन्दन हैं – मन, बुद्धि और अहंकार। ऐसे ये जो आठ तत्त्व हैं, ये अपरा प्रकृति के अन्तर्गत हैं। इन आठों को क्षेत्र के अन्तर्गत भी मानते हैं। हमने पिछली चर्चाओं में कहा था कि क्षेत्र माने अपरा और क्षेत्रज्ञ माने परा। भगवान कृष्ण सातवें अध्याय में यह प्रस्तावना कर देते हैं। वे कहते हैं कि देखो अर्जुन! यह अष्टभाग से समन्वित अपरा प्रकृति है। **क्षिति जल पावक गगन समीरा** – ये पंचभूत हैं। ये पंचभूत पंचतन्मात्राओं से निकले हुए हैं। ये पंचतन्मात्राएँ, मन, बुद्धि और अहंकार, ऐसे ये आठ क्षेत्र या खेत हैं। यह हमारे भीतर का जड़ पक्ष है। चैतन्यपक्ष है – **जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्** – यहाँ पर यह कहा गया है कि अपरा प्रकृति से भिन्न परा प्रकृति है। वह परा प्रकृति चैतन्यात्मक है। जड़ भाग को हमने क्षेत्र कहा और उसको जाननेवाला क्षेत्रज्ञ है। यहाँ १३वें अध्याय में हमने क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का विवेचन देखा। इस क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के पार अवस्थित परमात्मा को पाने की राह इसमें दिखाई गयी है। इसीलिए वह क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग है। पर यहाँ इस १४वें अध्याय में गुणों पर जोर दिया गया है। यह सारा संसार तीन गुणों से बना है। इसको हम कैसे समझें? एक उदाहरण के माध्यम से इसे समझने की कोशिश करते हैं।

भौतिक जगत का एक उदाहरण

आज तो विज्ञान का युग है। विज्ञान में भी जब हम किसी वस्तु को तोड़ते हैं, तो तोड़ते-तोड़ते कहाँ आते हैं? पहले मॉलिक्यूल्स (Molecules) सबसे छोटा अंश था। उसके बाद एटम (Atom) सबसे छोटा अंश कहलाया। और आज इलेक्ट्रॉन (Electron) को युनिट (Unit) माना गया है। युनिट का अर्थ होता है सबसे छोटी इकाई, सबसे छोटा अंश। तो जो जड़भूत है, उसका सबसे छोटा खण्ड है – इलेक्ट्रॉन। आप तो पढ़ते ही हैं कि कैसे मॉलिक्यूल्स के भीतर एटम छिपा रहता है। पहले तो वैज्ञानिक यह समझते थे कि मॉलिक्यूल्स ही इस जगत की सबसे छोटी इकाई है। जैसे जीवशास्त्र के अनुसार जीवन की इकाई क्या है? प्राण हैं। प्राणों की इकाई क्या है? इसको हम कहते हैं – सेल (Cell) जीवाणुकोश। यह जो सेल (Cell) या जीवाणुकोश है, वह जीवशास्त्र (Biological Science) की दृष्टि से इकाई है। इसी इकाई के तत्त्व के आधार पर जीवशास्त्र का सारा भवन खड़ा होता है। उसी तरह यहाँ पर हम देखते हैं कि तीन गुणों से इस सृष्टि की रचना हुई है – सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण। इन तीनों गुणों में

से प्रत्येक का यहाँ पर विस्तार से चिन्तन किया गया है। यहाँ पर प्रत्येक गुण का स्वरूप और फलश्रुति भी बताई गयी है। अमुक गुण यदि अधिक बढ़ जाए, तो क्या फल होता है? यह सब इस अध्याय में बताया गया है। यहाँ गुण के माध्यम से परमात्मतत्त्व की ओर जाने का प्रयास किया गया है। यह इस अध्याय की विशिष्टता है। जैसे सृजन के क्षेत्र में हम एक पदार्थ को लेते हैं, तोड़ते चले जाते हैं। पहले पदार्थ को मॉलिक्यूल कहते थे। संस्कृत में उसके लिए अणु शब्द का प्रयोग किया गया। तब ऐसा माना गया था कि मॉलिक्यूल से छोटा और कुछ नहीं है। पदार्थ के सबसे छोटे भाग के रूप में मॉलिक्यूल आया। पर वैज्ञानिक ने मॉलिक्यूल को तोड़ दिया। उसके भीतर में एटम (Atom) छिपा मिला। उस समय धारणा बनी कि एटम ही सबसे छोटी इकाई है। एटम ठोस है, जिसे तोड़ा नहीं जा सकता। पर हम पढ़ते हैं कि बीसवीं सदी के प्रारम्भ में लॉर्ड रुदरफोर्ड (Ruther Ford) ने जो प्रयोग किए, उन प्रयोगों के द्वारा उन्होंने सिद्ध कर दिया कि एटम भी टूटता है। एटम अर्थात् परमाणु। तो उन्होंने यह देखा कि एटम टूटता है और उसके भीतर में न्यूट्रोन (Neutron), प्रोटान (Proton) और इलेक्ट्रॉन (Electron) रहते हैं और तीनों के गुण बताए हैं। इतना छोटा एटम और उसमें से भी निकल आए इलेक्ट्रॉन आदि। एटम को तोड़ने से ये तीन शक्तियाँ निकलीं। पर अभी तक विज्ञान यह निश्चित नहीं कर पाया है कि इलेक्ट्रॉन कणात्मक है अथवा तरंगात्मक। जब विज्ञान के क्षेत्र में यह निर्णय नहीं किया जा सका, तो एक नया शब्द बनाया गया उसको प्रकट करने के लिए और कहा गया वह ''वेविकल'' (Wavicle) है। अब यदि हम इस आधार पर गुणों की तुलना करें, तो देखेंगे कि गुणों की कल्पना नहीं हो सकती। जब हम सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण की बात करते हैं, तो ऐसा भासता है कि ये सब कोई भौतिक पदार्थ हैं क्या? इस तरह चिन्तन करने पर हम समझ नहीं पाते हैं। परन्तु एक तुलना इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन और न्यूट्रॉन के साथ की जा सकती है। इन तीन गुणों में से जो सत्त्वगुण है, उसकी तुलना की जा सकती है प्रोटान से। रजोगुण की तुलना इलेक्ट्रॉन से कर सकते हैं और तमोगुण की तुलना न्यूट्रॉन से की जा सकती है। सारा संसार त्रिगुणात्मक है। इन्हीं तीनों गुणों से यह संसार बना हुआ है। गीता में भी यही कहा गया है –

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।

तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुण : गुणों का अवरोही क्रम

श्रीकृष्ण कहते हैं, 'अर्जुन ! मेरी ये जो माया है, वह तीन गुणों से बनी हुई है। इसको पार करना बड़ा कठिन है। पर जो मेरी शरण आता है, माया उसको बाँधकर नहीं रख पाती।' इसका मतलब क्या हुआ? भगवान मायाधीश हैं। वे माया पर नियन्त्रण करते हैं। वे माया को अपनी मर्जी से चलाते हैं। और माया है यह संसार या प्रकृति, जो त्रिगुणात्मिका है। प्रभु का कहना है कि जो मेरी शरण में आ जाता है, वह माया से ऊपर उठ जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि यह जो त्रिगुणात्मक माया है, वह भगवान के द्वारा संचालित हो रही है और हम जब भगवान की शरण में जाते हैं, तो स्वाभाविक है कि उस माया से हमें त्राण मिलता है। उस माया से हमारी रक्षा होती है। यहाँ पर जब हम तीनों गुणों की बात कहेंगे। और यदि भौतिकी की दृष्टि से हम देखें, तो ऐसा लगता है कि हम इन गुणों को अच्छी तरह समझ सकेंगे। सत्त्वगुण के भीतर प्रकाश अधिक होता है। उसके भीतर किसी प्रकार का विकार नहीं होता। रजोगुण के भीतर कर्म-चांचल्य पाया जाता है। तमोगुण में प्रमाद का बाहुल्य पाया जाता है। इन तीन गुणोंवाले भवन को इस प्रकार रचा गया है कि तमोगुण को रजोगुण के द्वारा जीतो और रजोगुण को सत्त्वगुण के द्वारा जीतो। इस सत्त्वगुण को भगवान की भक्ति के द्वारा जीतो। यह समीकरण यहाँ पर बताया गया है। तमोगुण से व्यक्ति आलसी और निरुद्यमी बन जाता है। यह तमोगुण के बाहुल्य से होता है। भले ही कोई ऐसा कहे कि यह संसार तो मिथ्या, माया है। भगवान का भजन करना चाहिए। ऐसा कहकर कोई संसार से भागने की चेष्टा कर सकता है। पर स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि यह सत्त्वगुण का प्रकाश नहीं है। यद्यपि दोनों समान दीखते हैं। सत्त्वगुण का भी जो प्रतिफल है, वह भी बहुत-कुछ ऐसा ही रहता है। पर कहते हैं, दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है। तमोगुण की जो प्रतिक्रिया होती है, वह सत्त्वगुण से ऊपरी तौर पर समान ही लगती है। एक तमोगुणी व्यक्ति है, आलसी एवं प्रमादी, वह निठल्ला रहता है और एक अत्यन्त सत्त्वगुणी व्यक्ति है, वह भी निठल्ला-सा बैठा दिखाई देता है। दोनों का बाहरी आचरण लगभग एक प्रकार का

दिखाई देता है। यदि हम भीतर झाँककर देखें, तो दोनों में बहुत अन्तर दृष्टिगोचर होता है। स्वामी विवेकानन्द इस अन्तर को एक अन्य उदाहरण के माध्यम से प्रकट करते हैं। जैसे जहाँ पर रोशनी न हो वहाँ अन्धेरा रहता है। और जहाँ पर चौंधियाती रोशनी हो, वहाँ भी अन्धेरा-सा ही रहता है। रोशनी के अभाव में जो अन्धेरा होता है, उसमें भी आँखें देख नहीं पातीं। चौंधियाती रोशनी यदि आँखों पर फेंक दी जाए, तो भी आप देख नहीं पाते। तो चाहे रोशनी का अभाव हो, चाहे चौंधियाती रोशनी हो, दोनों ही दशाओं में आपकी आँखें देख नहीं पातीं। पर इसका क्या यह मतलब है कि दोनों एक ही समान हैं। भले ही फल ऐसा मालूम पड़ता है कि एक समान है। दोनों में दृष्टिशक्ति काम नहीं करती। तो फिर वह अन्तर क्या है? एक में रोशनी का अभाव और दूसरी में चौंधियाती रोशनी। तो ठीक उसी प्रकार का अन्तर सत्त्वगुण और तमोगुण में भी है। तमोगुण मानो अन्धेरे से भरा हुआ और सत्त्वगुण रोशनी या प्रकाश से भरा हुआ। एक तमोगुणी आदमी बैठा हुआ है, उसमें कोई इच्छा ही नहीं है, निठल्ला है, काम नहीं करना चाहता, चेष्टाहीन है, उद्यमहीन है। एक सत्त्वगुणी व्यक्ति भी आसमान के ध्यान में रमकर पड़ा है। उसमें भी बाहरी कोई चेष्टा नहीं दिखाई देती। ऊपर से दोनों समान ही दिखाई देते हैं। पर दोनों में बड़ा भारी अन्तर है। स्वामीजी कहते हैं कि इस तमोगुण को, भीतर की जड़ता को रजोगुण से काटना चाहिए। स्वामीजी ने जिस भारत को देखा था, वहाँ तो सर्वत्र आलस्य का भाव था। ज्ञान की आड़ लेकर मनुष्य आलसी बन गया था। उस समय यह बात बहुत प्रचलित थी कि संसार माया है। अरे, इस माया को छोड़ो, भाई, माया को त्यागो। माया को छोड़कर क्या करता था? जंगल में चला गया। आलसी बन गया। दुनिया में रहने से काम करना पड़ता है। पसीना बहाना पड़ता है। पर दुनिया को छोड़ देने से साधुओं को भिक्षा मिल ही जाती है, कमाना नहीं पड़ता। कहीं पर भी कुछ चेष्टा नहीं करनी पड़ती। इन सबके कारण आलस्य का भाव फैल गया था। स्वामीजी ने फटकारते हुए कहा था, 'मूर्खो ! तुम घोर तमोगुण में डूबे हुए हो और अपने आपको सत्त्वगुणी मानते हो।' संसार को छोड़ने से संसार छूट थोड़े ही जाता है। मन में तो संसार का ताना-बाना बुना ही जाता है। स्वामीजी ने भारतवासियों को बड़ी फटकार लगाई कि वे आलसी हैं, काम नहीं करना चाहते। इसीलिए तुम लोगों ने ज्ञान की आड़ ले ली, जिससे कर्म से भागा जाए। अज्ञान से निकलने का यह तो कोई तरीका नहीं है। बल्कि रजोगुण अपने जीवन में लाना चाहिए। क्रियाशील होना पड़ेगा। उद्यमी बनकर तमोगुण को जीतने का प्रयास करना चाहिए। इस रजोगुण को सत्त्वगुण से जीतना चाहिए। अन्ततः इस सत्त्वगुण को भी जीतना पड़ेगा, तब जाकर परमात्मा के दर्शन हो सकते हैं। सत्त्वगुण परमात्मा के पास जाने का रास्ता बताता है। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ३७६ का शेष भाग

बढ़ते जा रहे हैं। माना कि सम्पूर्ण विश्व हमारा घर है, हम कहीं भी जा कर काम कर सकते हैं, पर हम अपने देश को तो न भूलें। विदेश में रहकर भी हम देश के लिए क्या कर सकते हैं, इस पर निरन्तर विचार करना चाहिए। भारत में चल रही किसी अच्छी सामाजिक गतिविधि में अपनी भागीदारी करनी चाहिए। अर्थात् अपना राष्ट्र अपनी आत्मा का हिस्सा बना रहे। ये संस्कार तभी आएँगे, जब बचपन से ही बच्चों में राष्ट्रबोध जगाएँगे। यह देश मेरा है। इसी के लिए जीना-मरना है। इसी की उन्नति के लिए मेरा जीवन है। राष्ट्र की मैं सन्तान हूँ और इसके प्रति मेरा कर्तव्य है। स्कूल में ऐसी शिक्षा मिले, घर में वैसा परिवेश मिले। समाज में राष्ट्रवादी लोग वातावरण बनाएँ, तब कहीं एक महान राष्ट्र का निर्माण हो सकेगा, अन्यथा जिस ढंग से भारत में इंडिया विकसित हो रहा है, उसे देखकर चिन्ता होती है कि भविष्य का भारत कैसा होगा? इसलिए राष्ट्रवादी शक्तियों को सच्चाई और समर्पण के साथ प्रयास करना होगा। अन्त में अपने ही मुक्तकों से बात समाप्त करूँगा –

राष्ट्र बोध जग जाए मन में तो यह देश महान बने, बच्चा-बच्चा देशभक्त हो ऐसा हिन्दुस्तान बने।
भूल से भी देश-विरोधी सोच नहीं पनपे मन में, राष्ट्रप्रेम से भरा हृदय हो, तो सुन्दर उद्यान बने।।
इक बार नहीं, दो बार नहीं, यह तो हर बार कहेंगे हम,जिन्हें देश से प्यार नहीं उनको गद्दार कहेंगे हम।
देश हमें परिवेश दे रहा जीवन की खुशहाली का, ऐसे प्यारे देश को हर पल अपना प्यार कहेंगे हम।। ○○○

साधुओं के पावन प्रसंग (७९)

स्वामी अशेषानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद स्वामी पद्माक्षानन्द ने किया है, जिसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

स्वामी अशेषानन्द जी महाराज की स्मृति में –

''पूर्व में नियम था कि मठ-मिशन में सम्मिलित होने के तीन वर्ष के बाद ब्रह्मचर्य-दीक्षा होगी। मेरे सम्मिलित होने के एक वर्ष के भीतर ही शरत महाराज ने मुझे उद्बोधन से बेलूड़ मठ में ब्रह्मानन्द महाराज के पास ब्रह्मचर्य-दीक्षा के लिए भेजा। जब मैं बेलूड़ मठ पहुँचा, तब महाराज मठ भवन के दोमंजिला के पूर्व ओर की बरामदे में आरामकुर्सी पर बैठे हुए माँ गंगा को निहार रहे थे। वे धीर-स्थिर बैठे थे और कनिष्ठ संन्यासियों के साथ बातें कर रहे थे। इनमें से कुछ मेरे जैसे ब्रह्मचर्य-दीक्षा के प्रार्थी साधु भी थे। मैंने महाराज से कहा, 'महाराज, मैं आपका आशिर्वाद पाने के लिए आया हूँ। आप मुझे ठाकुर की जन्म-तिथि (१९२२) पर ब्रह्मचर्य-दीक्षा दीजिए, मैं सदैव आपका अत्यन्त आभारी रहूँगा।'

''उन्होंने थोड़ा सोचते हुए कहा, 'देखो, मैं तुमको ब्रह्मचर्य-दीक्षा दूँगा लेकिन एक शर्त है। तुमको १०८ रुपया गुरुदक्षिणा के रूप में अग्रिम देना होगा। अन्यथा ब्रह्मचर्य-दीक्षा नहीं होगी।''

''हतप्रभ होकर मैंने कहा, 'महाराज, मेरे पास रुपया तो नहीं है। इसके अतिरिक्त इतना रुपया मैं कहाँ से पाऊँगा? यदि आपने कृपा नहीं की, तो मेरी क्या गति होगी!'

''तब महाराज ने गम्भीरता से कहा, 'देखो, मैं तुमको एक उपाय बताता हूँ। स्वामी सारदानन्द बहुत धनी हैं। उनके पास उद्बोधन का सब रुपया है। तुम उनके सेवक हो। तुम सारदानन्द के पास जाओ, उनसे ब्रह्मचर्य-दीक्षा के लिए रुपया ले आओ।'

''मैं निर्वाक् होकर खड़ा रहा। तदुपरान्त महाराज ने गोविन्द नामक एक ब्रह्मचारी से कहा, 'गोविन्द, तुम तो मिदनापुर से आये हो। यदि तुम उड़िया लोगों की तरह मेरा पसंदीदा ओडिसी नाच देखा सकते हो, तो मैं तुमको ब्रह्मचर्य-दीक्षा दूँगा।' बिना किसी द्विविधा के गोविन्द ने हाथ-पैर हिलाकर महाराज को नाच दिखाया। महाराज उसके प्रदर्शन से बहुत आनन्दित हुए और दिल खोलकर हँसे। उन्होंने उसको ब्रह्मचर्य-दीक्षा देना स्वीकार किया।

स्वामी अशेषानन्द

''किंकर्तव्यविमूढ़ तथा असहाय होकर मैं नाव से उद्बोधन वापस आ गया तथा शरत महाराज को बहुत गम्भीरता से सारी बातें बतायी। उन्होंने गम्भीर होकर कहा, ''बहुत अच्छा, तुम मठ जाकर महाराज से कहो कि मैं (स्वामी सारदानन्द) राजा महाराज का दास हूँ और उद्बोधन का सभी कुछ उनका हैं। उनकी जो माँग है, वह पूर्ण की जायेगी।'

''चिन्तामुक्त मैं अविलम्ब पुन: मठ आया और महाराज को प्रणाम करके शरत महाराज ने जो कहा था वह उनको बतला दिया।

''किन्तु आश्चर्यजनक रूप से महाराज ने अपने सिर को हिलाते हुए उच्च स्वर में कहा, 'उधार की बातें !' इन सब बातों में मैं भूलने वाला नहीं हूँ। 'मैं कैसे समझूँगा कि वह अपनी बात रखेगा? तुमने क्या उसके पास से कुछ लिखा हुआ लाया है? देखो, तुम उसके सचिव हो। तुम एक प्रारूप तैयार करके उसपर उनका हस्ताक्षर लेकर आओ, तो मैं उसको स्वीकार कर लूँगा।'

''मैं विमूढ़ अवस्था में पुन: उद्बोधन वापस आया। शरत महाराज उस समय ध्यान कर रहे थे। उनके ध्यान होने के बाद मैंने उनको महाराज की सभी बातें बतायी। उन्होंने सब सुनकर कहा, ''ठीक है। कल तुमको साथ लेकर मैं बेलूड़ मठ जाऊँगा।'

''अगले दिन शरत महाराज और मैं दोनों बेलूड़ मठ गये।

महाराज के कमरे में जाने के पूर्व उन्होंने मुझे बाहर प्रतीक्षा करने के लिए कहा। तदुपरान्त कुछ समय बाद वे महाराज के कमरे से बाहर निकले और मुझसे कहा, 'अन्य लोगों के साथ तुम्हारी भी ब्रह्मचर्य-दीक्षा होगी।' उन दोनों गुरुभाइयों के मध्य उस दिन क्या बातचीत हुई, पचास वर्षों के बाद आज भी वह मेरे लिए अज्ञात है।

जो भी हो, १९२२ ई. में ठाकुर की जन्मतिथि में मेरी ब्रह्मचर्य-दीक्षा हुई और यही महाराज द्वारा दी गयी अन्तिम ब्रह्मचर्य-दीक्षा थी। स्वामी शुद्धानन्द जी आचार्य थे। ब्रह्मचर्य-होम के बाद आशीर्वाद देते हुए महाराज ने कहा था "ठाकुर तुम सबको ब्रह्मचर्य-रक्षा करने की शक्ति दें। तुम सब पवित्रता से उज्ज्वल हो उठो। ठाकुर तुम सबको अपने पादपद्मो में भक्ति-प्रेम-स्नेह से पूर्ण कर दें। तुमलोगों के ऊपर उनकी अशेष कृपा सदैव वर्षित हो।" महाराज ने मेरा नाम दिया था, ब्रह्मचारी कल्याणचैतन्य।"

वेदान्त सोसायटी, पोर्टलैण्ड, ओरेगन

१९८७ ई. में अशेषानन्दजी महाराज बॉस्टन में दो ब्रह्मचारियों को दीक्षा देने के लिए आये। वहाँ पर सर्वगतानन्द, आदीश्वरानन्द, तथागतानन्द तथा मैं भी उपस्थित था। जब अशेषानन्दजी ने स्वामी आदीश्वरानन्द जी के व्याख्यान के समय परिहास सुना, तब वे इतना जोर से हँसे कि उसका कुछ कहना नहीं! एक भक्त ने उस समय उनका चित्र खींच लिया।

१९७३ ई. में जब मैं हॉलीवुड में ही था, तब अप्रैल महीने में स्वामी विविदिषानन्द जी ने मुझे ठाकुर-उत्सव के लिए व्याख्यान के लिए सिएटल आमंत्रित किया। सिएटल से वापस आते समय मैं पोर्टलैण्ड गया। मि. बूस (आश्रम के प्रेसिडेन्ट) को लेकर महाराज मुझे लेने के लिए एयरपोर्ट पर आये। श्रीमाँ के शिष्य तथा एक वरिष्ठ संन्यासी मुझे लेने के लिए आये हैं, यह देखकर मैं अतीव आनन्दित हुआ। उनके पास मैं कई दिन था। उन्होंने मुझे वहाँ के कई दर्शनीय स्थल जैसे Mount Hood, Multnomah Falls दिखाया। वापस आते समय मार्ग में जब हम कोलम्बिया नदी के तट पर खड़े हुए, तब महाराज ने स्तव-पाठ किया। ऐसा लगा कि वे विश्व की प्रकृति के भीतर ईश्वर का अनुभव कर रहे हों। एक अन्य दिन वे मुझे Scappoose Vedanta Retreat में लेकर गये। निबिड़ जंगल से घिरा हुआ १२० एकड़ जमीन था, जिसके मध्य में मन्दिर तथा निवास था। साधन-भजन के लिए यह बहुत सुन्दर तथा शान्त स्थल है।

एक दिन दोपहर में पोर्टलैण्ड आश्रम में संन्यासियों तथा भक्तों के साथ मैं भोजन करने बैठा था। अशेषानन्दजी महाराज विलम्ब से भोजन करते थे। उन्होंने भोजनकक्ष में आकर कहा, "चेतनानन्द, मैंने तुम्हारे लिए खीर बनायी है।" खीर नीचे से थोड़ी जल गयी थी एवं उसमें से जलने की दुर्गन्ध आ रही थी। जब उन्होंने मुझसे पूछा, तो मैंने कहा, "महाराज, खीर बहुत अच्छी हुई है।" वे बहुत आनन्दित हुए। मैंने इन वरिष्ठ संन्यासी के भीतर सेवा-भाव तथा मातृहृदय को देखा।

एक दिन रात्रि १० बजे महाराज मुझे अपने साथ लेकर आश्रम के निकट एक छोटे-से झील के किनारे घूमने गये। उस झील के चारों ओर घूमने का रास्ता है। वे निर्जन पसन्द करते थे। उस समय उन्होंने मुझे पुराने दिनों की बहुत-सारी बातें बतायीं। अच्छा होता, यदि मैंने वह सब लिखकर रखा होता। तदुपरान्त उन्होंने स्व-लिखित प्राय: ४०० पृष्ठ की दैनन्दिनी मुझे दी, जिसे उन्होंने शरत महाराज के साथ १९२१ से १९२७ तक उद्बोधन में रहते समय लिपिबद्ध किया था। मैंने उस दैनन्दिनी से ३१ पृष्ठ नकल करके इस स्मृतिकथा के परवर्ती अंश में संयुक्त कर दिया है।

१९७५ ई. में हॉलीवुड के कॉन्वेण्ट बिल्डिंग का उद्घाटन हुआ। मैंने स्वामी प्रभवानन्द जी से स्वामी अशेषानन्द जी को निमन्त्रण देने के लिए अनुरोध किया। वे तथा अन्यान्य संन्यासी आये थे।

तदनन्तर १९७६ ई. में स्वामी प्रभवानन्द जी महाराज के शरीर-त्याग के बाद उनके मेमोरियल सर्विस में अशेषानन्दजी महाराज हॉलीवुड आये थे। वे संन्यासियों तथा संन्यासिनियों को ब्रह्मचर्य तथा संन्यास देने के लिए हॉलीवुड, सैनफ्रांसिस्को तथा अन्यान्य स्थानों पर जाते थे। बेलूड़ मठ अमेरिका के वरिष्ठतम संन्यासी को इस प्रकार दीक्षा देने का अधिकार प्रदान करता है। **(क्रमश:)**

समाचार और सूचनाएँ

मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ भाव-प्रचार परिषद का अर्द्धवार्षिक सम्मेलन रामकृष्ण मठ, रीवा में सम्पन्न हुआ

५ और ६ अप्रैल, २०२५ को मध्य प्रदेश-छत्तीसगढ़ रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद के सम्मेलन का आयोजन रामकृष्ण मठ, रीवा में किया गया। कार्यक्रम का शुभारम्भ परिषद के अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी व्याप्तानन्द जी महाराज के द्वारा परिषद का ध्वजा फहराकर किया गया। तत्पश्चात् स्वदेश मन्त्र का

पाठ हुआ। दीप प्रज्वलन, स्वागतादि के बाद संयोजक स्वामी तन्मयानन्द जी के द्वारा संकल्प मन्त्र का पाठ कराया गया। उसके बाद संयोजक ने संक्षिप्त प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। रामकृष्ण मठ, रीवा के राघवेन्द्र मणि त्रिपाठी जी ने सबका स्वागत किया। पिछली बैठक की कार्यवाही का वाचन किया गया। तत्पश्चात् सदस्य-आश्रमों ने विगत छह माह का कार्य-विवरण प्रस्तुत किया। भावी कार्ययोजना और आश्रम की समस्याओं पर चर्चा हुई। संयोजक द्वारा आय-व्यय-पत्रक का वाचन एवं सभा द्वारा अनुमोदन हुआ। तत्पश्चात् संगठन के सशक्तिकरण पर परिषद के अध्यक्ष स्वामी व्याप्तानन्द, उपाध्यक्ष स्वामी प्रपत्त्यानन्द और पर्यवेक्षक स्वामी राघवेन्द्रानन्द जी का सम्बोधन हुआ। कान्त दूबे, अम्बिकापुर को परिषद का नया संयोजक चयन किया गया। इस सभा में कुल ३६ लोग उपस्थित थे।

दूसरे दिन भक्त-सम्मेलन हुआ, जिसमें स्वामी वीरेशानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द, स्वामी राघवेन्द्रानन्द और सभाध्यक्ष स्वामी निर्विकल्पानन्द जी ने भक्तों को सम्बोधित किया। श्रीरामकृष्ण-शरणम् और जयकार से सम्मेलन सम्पन्न हुआ। अपराह्न में सभी भक्तों को जंगल सफारी का भ्रमण कराया गया। इस भक्त-सम्मेलन में कुल ९० भक्तों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के परमाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने ३१ मार्च, २०२५ को **रामकृष्ण मिशन, तिरुअनन्तपुरम्** का उपकेन्द्र नट्टयम् में श्रीसारदा नर्सिंग कॉलेज के नये भवन का उद्घाटन किया।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के उपाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी दिव्यानन्द जी का छत्तीसगढ़ प्रवास

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के उपाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी दिव्यानन्द जी महाराज ने १७ अप्रैल, २०२५ को कोलकाता से छत्तीसगढ़ की धरा पर पदार्पण किया। विवेकानन्द हवाईअड्डा से महाराज जी उसी दिन रामकृष्ण मिशन, बिलासपुर चले गये। १८ अप्रैल को महाराजजी ने वहाँ के जिज्ञासुओं को दीक्षा प्रदान की। १९ अप्रैल को महाराज जी का रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में आगमन हुआ। उस दिन सन्ध्या आरती के बाद महाराजजी ने भक्तों को दर्शन दिया। २० और २१ अप्रैल को महाराजजी ने आश्रम के श्रीरामकृष्ण मन्दिर में जिज्ञासुओं को दीक्षा प्रदान की। २१ अप्रैल को ही सन्ध्या आरती के बाद ७.३० बजे आश्रम के विवेकानन्द सत्संग भवन में एक सभा का आयोजन किया गया,

जिसमें महाराजजी ने उपस्थित भक्तों को सम्बोधित किया। २२ अप्रैल को महाराजजी ने रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर हेतु प्रस्थान किया। वहाँ २८ अप्रैल तक महाराजजी ने निवास किया। वहाँ महाराज ने जिज्ञासुओं को दीक्षा प्रदान की और अन्य विभिन्न कार्यक्रमों में सम्मिलित हुये। २९ अप्रैल को महाराजजी पुन: रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में पधारे। ३० अप्रैल, २०२५ को प्रात: ९ बजे महाराजजी कोलकाता हेतु प्रस्थान किये। इस प्रकार महाराजजी ने छत्तीसगढ़ में अल्पकालिक निवास कर हम सबको धन्य किया।